मुक्ति संग्राम

वर्ष 1 • अंक 7 • मार्च 2024 • मासिक • क़ीमत 10 रुपए

मोदी सरकार के सांप्रदायिक-फ़ाशीवादी हमले का मुँहतोड़ जवाब देने के लिए आगे आओ!

नागरिकता संशोधन क़ानून (सी.ए.ए.), राष्ट्रीय नागरिक रजिस्टर (एन.आर.सी.) और राष्ट्रीय जनसंख्या रजिस्टर (एन.पी.आर.) रद्द कराने के लिए विशाल जन आंदोलन खड़ा करो!

संपादकीय

मोदी सरकार ने 11 मार्च 2024 से 'नागरिकता संशोधन क़ानून' (सी.ए.ए.) लागू करने का नोटिफ़िकेशन जारी कर दिया है। कोरोना लॉकडाउन से पहले भारत की सत्ता पर काबिज़ संघ-भाजपा अपने राजनीतिक एजेंडे 'हिंदी, हिंदू, हिंदुस्तान' के तहत धार्मिक अल्पसंख्यकों, ख़ासकर मुसलमानों को नागरिक अधिकारों से वंचित करने के लिए नागरिकता संशोधन क़ानून लेकर आई थी। इस क़ानून के ख़िलाफ़ पूरे देश में जन आंदोलन हुआ। देश के हुक्मरानों ने पूरा ज़ोर लगाया कि इस आंदोलन में हिंदू बनाम मुसलमान का पत्ता खेला जाए। लेकिन अलग-अलग धर्मों के लोगों ने आपसी एकता की नई मिसालें पेश करते हुए हुक्मरानों के फ़िरक़ापरस्त मंसूबों को कामयाब नहीं होने दिया। फिर कोरोना भारत के हुक्मरानों के लिए एक अवसर बनकर आया और वे इस आंदोलन को बिखेरने में काययाब हो गए। नागरिकता क़ानून को लागू करने के बारे में भी हुक्मरानों ने उस समय चुप्पी धारण कर ली थी।

लेकिन यह चुप्पी वक़्ती थी। भारत सरकार के गृह मंत्रालय ने 11 मार्च को इस क़ानून से संबंधित नोटीफ़िकेशन जारी कर दिया है। यह दिन भी मोदी हुकूमत ने मुसलमानों को चिढ़ाने के लिए जानबूझकर चुना है, क्योंकि इसी दिन रमजान का महीना शुरू हुआ है। भाजपा ने लोकसभा चुनावों से बिल्कुल पहले इसे लागू करके वोटें बटोरने के लिए फ़िरक़ापरस्ती का पत्ता खेला है। मोदी हुकूमत द्वारा देशी-विदेशी पूँजीपतियों के हित में लागू की जा रही आर्थिक-राजनीतिक नीतियों के चलते मज़दूर-मेहनतकश जनता को भयंकर ग़रीबी, बदहाली, बेरोज़गारी, महँगाई का सामना करना पड़ रहा है। मोदी हुकूमत के ख़िलाफ़ जनता में व्यापक रोष है। इन दिनों मोदी सरकार के चुनावी बांड संबंधी जानकारियाँ सामने लाने से भाग खड़े होने से इसकी अच्छी-ख़ासी बदनामी हुई है। इसलिए भाजपा के पास जनता का ध्यान इन मुद्दों से हटाने के लिए धर्म के नाम पर नफ़रत फैलाने-दबाने-जनता को आपस में लड़ाने के सिवा कोई रास्ता भी नहीं बचा है। इसलिए आर.एस.एस.-भाजपा नागरिकता संबंधी क़ानूनों को अपने सांप्रदायिक एजेंडे के लिए इस्तेमाल कर रहे हैं।

भारत के हुक्मरान जनता के ख़िलाफ़ एक के बाद एक आर्थिक-राजनीतिक हमला छेड़ते रहे हैं। भारत में बसने वाले मुस्लिम समुदाय के लोगों से नागरिकता छीनने वाले इस फ़िरक़ापरस्त फ़ाशीवादी हमले के विरुद्ध आज देश के सभी धर्मों, जातियों, क़ौमों के मज़दूरों-मेहनतकशों-इंसाफ़पसंद नागरिकों को संघर्ष के लिए तैयार रहना चाहिए।

पिछले दस साल से मोदी सरकार द्वारा राष्ट्रीय स्वयंसेवक संघ के 'हिंदू राष्ट्र' के सपने को पूरा करने के लिए एड़ी-चोटी का ज़ोर लगाया जा रहा है। कश्मीर से धारा 370 हटाने, 'तीन तलाक़' ख़त्म करने और राम मंदिर बनाने जैसे फ़ैसले लागू कर दिए गए हैं, जिनसे जनता की धार्मिक भावनाएँ भड़काकर राष्ट्रीय स्वयंसेवक संघ द्वारा लंबे समय से लामबंदी की जा रही थी। संघ का एक बड़ा उद्देश्य 'हिंदू राष्ट्र' बनाने के घोर जनविरोधी सांप्रदायिक फ़ाशीवादी सपने को पूरा करना है। 'हिंदू राष्ट्र' में सिर्फ़ हिंदुओं को रहने का हक़ होगा और बाक़ी धार्मिक अल्पसंख्यकों, ख़ासकर मुसलमानों, को या तो देश छोड़ना पड़ेगा या फिर दोयम दर्जे का नागरिक बनकर रहना होगा। कहने की ज़रूरत नहीं कि इस तथाकथित 'हिंदू राष्ट्र' में राज तो पूँजीपति ही करेंगे, ग़रीब मज़दूरों-मेहनतकशों को ग़ुलामी भरी बदतर ज़िंदगी ही बितानी होगी! तथाकथित निगरानी केंद्रों, जो कि नाज़ी यातना केंद्रों का ही दूसरा नाम है, में बंद करके मुसलमानों को ग़ुलाम बनाना भी इस फ़ाशीवादी क़दम का एक मक़सद है। इस क़ानून की मार तले अन्य धर्मों (हिंदुओं समेत) के ग़रीब, दलित और आदिवादी भी आएँगे।

नागरिकता के साथ जुड़े सब क़ानून, फ़ैसले, विवाद इसी तथाकथित 'हिंदू राष्ट्र' बनाने की साज़िश की उपज हैं। भले ही देशव्यापी विरोध 'नागरिकता संशोधन क़ानून' से शुरू हुआ था, परंतु असल में 'नागरिकता संशोधन क़ानून', 'राष्ट्रीय नागरिक रजिस्टर' और 'राष्ट्रीय जनसंख्या रजिस्टर' आपस में जुड़े हुए हैं। इसलिए इन तीनों का ही विरोध होना चाहिए। मोदी सरकार द्वारा जनसंख्या रजिस्टर बनाने के लिए चोर दरवाज़े से आधार कार्ड का डेटा लोगों की सहमति के बिना उठाया जा रहा है, जिसका ज़ोरदार विरोध किया जाना चाहिए।

'राष्ट्रीय नागरिकता रजिस्टर' का पहला प्रयोग असम में हुआ। असम की आबादी का एक हिस्सा बंगाली प्रवासियों का भी है। इनमें से काफ़ी बड़ा हिस्सा तो अंग्रेज़ों के ज़माने से यहाँ रह रहा है। ऐसा प्रवास एक स्वाभाविक चीज़ है, लेकिन असम के मामले में यह पूरी तरह स्वाभाविक नहीं था। भारतीय हुक्मरान वर्गों ने बहुराष्ट्रीय भारत को जबरन एक राष्ट्र बनाने के अपने प्रोजेक्ट के तहत स्थानीय जनता की अपनी भाषा और संस्कृति के प्रति शंकाओं को हमेशा नज़रअंदाज़ किया है। यही असम में हुआ है। यह पूरा मसला एक अलग लेख की माँग करता है। भारतीय हुक्मरानों ने असम में प्रवास की प्रक्रिया को असमी

(पन्ना 7 पर जारी)

इस अंक में

- मोदी सरकार के सांप्रदायिक-फ़ाशीवादी हमले का मुँहतोड़ जवाब देने के लिए आगे आओ! नागरिकता संशोधन क़ानून (सी.ए.ए.), राष्ट्रीय नागरिक रजिस्टर (एन.आर.सी.) और राष्ट्रीय जनसंख्या रजिस्टर (एन.पी.आर.) रद्द कराने के लिए विशाल जन आंदोलन खड़ा करो! 1
- सांप्रदायिक दंगे और उनका इलाज – भगतसिंह 3
- लाखों जर्मन मज़दूर संघर्ष की राह पर 4
- पीस रेट पर काम करने वाले मज़दूरों का भयानक शोषण 4
- कोरोना लॉकडाउन के बाद तेज़ी से निजीकरण की ओर बढ़ती भारत की स्वास्थ्य व्यवस्था 5
- भारत पर बढ़ता क़र्ज़ 6
- अंतरराष्ट्रीय मज़दूर स्त्री दिवस पर विभिन्न कार्यक्रमों का आयोजन 8
- धारा 295-ए के ख़िलाफ़ रोष कन्वेंशन और प्रदर्शन 8
- पूँजीपति वर्ग सर्वोपरि अपनी क़ब्र खोदने वालों को पैदा करता है! 9
- एरिक हेनींग्सेन का चित्र 'एक घायल मज़दूर' 10
- हल्द्वानी हिंसा के लिए संघ-भाजपा की फ़ाशीवादी राजनीति ज़िम्मेदार 11
- नई सवेर पाठशाला के अनुभव 11
- पाकिस्तान में चुनाव – बदतर हो रहे जनता के हालात के बीच लोकतंत्र की नौटंकी 12
- आबादी: एक समस्या? 14
- मोदी सरकार के दस सालों की आर्थिक नीतियों का कच्चा चिट्ठा: भाजपा-आर.एस.एस. के मज़दूर-मेहनतकश विरोधी चरित्र को पहचानो! देशी-विदेशी पूँजीपतियों के दलालों को जनता में नंगा करो! 16

मुक्ति संग्राम

दफ़्तर फ़ोन नं.– 83607-66937 **ईमेल –** muktisangram.hindi@gmail.com

सहयोग राशि – एक प्रति – 10 रुपए

सालाना – 120 रुपए (डाक के ज़रिए – 150 रुपए)

मुक्ति संग्राम के लिए सहयोग राशि नीचे दिए गए बैंक खाते/UPI के ज़रिए भेजें।

राशि भेजकर उपरोक्त फ़ोन नंबर पर सूचित ज़रूर कर दें।

UPI No. – 1851 1951 और 83607 66937

UPI ID

MUKTISANGRAAM@SBI

Lakhwinder Singh

A/c No. – 5514 000 7508

STATE BANK OF INDIA

BRANCH – Khanna NGM

IFSC CODE – SBIN0050171

मुक्ति संग्राम यहाँ से प्राप्त करें

- **शहीद भगतसिंह पुस्तकालय, #498, एल.आई.जी. फ़्लैट्स, जमालपुर कालोनी, लुधियाणा – 83607-66937**
- **मज़दूर पुस्तकालय, #4135, ई.डब्ल्यू.एस. कालोनी, ताजपुर रोड, लुधियाणा – 85910-90800**
- **जनचेतना, दुकान नं. 8, पंजाबी भवन, लुधियाणा – 70429-76396**
- **मानव, चंडीगढ़ – 98888-08188**
- **पावेल, सिरसा – 86078-89902**
- **मनन, शिमला – 98162-37848**

पाठक मंच

पत्रिका के मिलने का इंतज़ार रहता है...

आदरणीय संपादक महोदय, मुक्ति संग्राम,

पत्रिका के बारे में हमारे साथी द्वारका प्रसाद पूर्व प्रो. जेएनयू से जानकारी मिली। उसके बाद करीब एक साल पहले पत्रिका का सदस्य बना। पत्रिका नियमित मिल जाती है। पत्रिका में छपी सामग्री बहुत ही सरल भाषा में वैज्ञानिक विचारधारा के आधार पर सारगर्भित विश्लेषण करते हुए छापी जा रही है। पत्रिका में शोषण, दमन, उत्पीड़न के विरुद्ध प्रगतिशील विचारों का समावेश किया जा रहा है। पत्रिका के सभी लेख वर्गीय दृष्टिकोण के साथ तथ्यों और विज्ञान की कसौटी पर तर्कों के साथ रखे गए हैं। पत्रिका के लेखों को पढ़ने से वर्गीय दृष्टिकोण से घटनाओं को समझने और विश्लेषण करने में सहायता मिलती है। इसलिए पत्रिका के मिलने का इंतज़ार रहता है। पत्रिका के लिए वार्षिक सहयोग राशि भेज दी है, आशा है पत्रिका समय पर मिलती रहेगी। आपका बहुत-बहुत धन्यवाद।

आपका पाठक

– बजरंग लाल एडवोकेट,
संयोजक शहीद भगतसिंह विचार मंच,
झुंझुनूँ, राजस्थान

इस अन्यायी समाज को बदलना ही होगा...

मैं आरुषि हूँ, उम्र 16 साल, चंडीगढ़ की एक मज़दूर बस्ती हल्लोमाजरा में रहती हूँ। मेरा परिवार असम से है लेकिन मेरा बचपन चंडीगढ़ में बीता। मैं पहली बार 'मुक्ति संग्राम' के लिए अपनी ज़िंदगी का अनुभव लिख रही हूँ।

लोहड़ी गुज़र जाने के बाद जनवरी के आख़िरी पखवाड़े में भी ठंड बढ़ती जा रही है। मौसम का आलम यह है कि तीन सप्ताह में एक-आध दिन को छोड़कर धूप नहीं निकली। कभी-कभी ठंडी हवाएँ चलती हैं। सुबह नौ-दस बजे भी ऐसा लगता है मानो सुबह के सात बजे हों और शाम को पाँच बजते ही ऐसा लगता है जैसे सात-आठ बज गए हों। यानी दिन बहुत जल्दी रात में बदल जाता है और रात दिन होने का नाम ही नहीं लेती।

इतनी ठंड के दिनों में भी मज़दूर नल के बर्फ़ीले-से पानी से नहाकर काम पर निकल जाते हैं और रात 8-9 बजे तक थक-हार घर लौटते हैं। इस सख़्त मेहनत के बाद भी उन्हें मात्र दस-बारह हज़ार महीना वेतन ही मिलता है। इतनी-सी कमाई में एक मज़दूर क्या-क्या करे। कमरे का किराया ही कहीं 3000-3500 से कम नहीं। हर परिवार में औसतन चार सदस्य होते हैं। बच्चों की पढ़ाई का ख़र्च, राशन का ख़र्च, ऐसे कितने ही ख़र्च हैं जो इस तनख़्वाह से पूरे करने पड़ते हैं। हर साल माँएँ वही 4-5 साल पुराने कपड़े जैसे-तैसे पहनकर ठंड से बचने की कोशिश करती हैं। बड़े बच्चों के छोटे कपड़े छोटे भाई-बहनों को पहना दिए जाते हैं। इतनी ठंड के मौसम में भी रेहड़ी पर सब्ज़ी बेचने वाले मज़दूर सुबह चार-चार बजे उठकर सब्ज़ी मंडी से सौदा लेने निकल पड़ते हैं। सड़कों पर कपड़ा बिछाकर सामान बेचने वाले कितने ही बूढ़े औरत-मर्द तेज़ हवा में सामान बेचने को मजबूर होते हैं।

मेरे आसपास के ज़्यादातर बच्चे और किशोर शारीरिक रूप से कमज़ोर हैं। मेरी उम्र 16 साल है और मेरा अपना वज़न मुश्किल से 40 किलो है। क्योंकि हमें कभी पर्याप्त दूध, दही, घी आदि मिला ही नहीं जैसा कि पैसे वालों के बच्चों को मिलता है। सर्दियों में अमीरी-ग़रीबी का फ़र्क़ और भी ज़्यादा नज़र आता है। इस मौसम में अमीरों के बच्चे अपने गर्म कमरों में हीटर लगाकर, तरह-तरह के गर्म कपड़े पहनकर चैन की नींद सोते हैं, उनमें से कुछ को तो ठंडा मौसम बहुत अच्छा लगता है क्योंकि उन्हें पसीना नहीं आता। जबकि ग़रीब मज़दूरों के बच्चे कोशिश करते हैं कि जैसे-तैसे सख़्त ठंड का यह महीना-डेढ़ महीना बीत जाए। ग़रीबों के बच्चों पर यह मार असल में प्रकृति की मार नहीं है, बल्कि यह अमीर और ग़रीब के बीच बँटे समाज की मार है और इस अन्यायी समाज को बदलना ही होगा।

– आरुषि, चंडीगढ़

ऑनलाइन 'मुक्ति संग्राम' पढ़ने के लिए नीचे दिए गए साइट और फ़ेसबुक पन्ने के लिंक पर जाएँ :

साइट – muktisangram.wordpress.com

फ़ेसबुक पन्ना – facebook.com/muktisangrammag

मुक्ति संग्राम के लेख-टिप्पणियाँ और अन्य साम्रगी अपने वट्सअप पर मगँवाने के लिए अपना वट्सअप नंबर और पता इस नंबर पर भेजें :

83607-66937

शहादत दिवस 23 मार्च पर विशेष

सांप्रदायिक दंगे और उनका इलाज

– भगतसिंह

जन्म – 28 सितंबर 1907
शहादत – 23 मार्च 1931

भारतवर्ष की दशा इस समय बड़ी दयनीय है। एक धर्म के अनुयायी दूसरे धर्म के अनुयायियों के जानी दुश्मन हैं। अब तो एक धर्म का होना ही दूसरे धर्म का कट्टर शत्रु होना है। यदि इस बात का अभी यक़ीन ना हो तो लाहौर के ताज़ा दंगे ही देख लें। किस प्रकार मुसलमानों ने निर्दोष सिखों, हिंदुओं को मारा है और किस प्रकार सिखों ने भी वश चलते कोई कसर नहीं छोड़ी है। यह मार-काट इसलिए नहीं की गई कि फलाँ आदमी दोषी है, बल्कि इसलिए कि फलाँ आदमी हिंदू है या सिख है या मुसलमान है। बस किसी व्यक्ति का सिख या हिंदू होना मुसलमानों द्वारा मारे जाने के लिए काफ़ी था और इसी तरह किसी व्यक्ति का मुसलमान होना ही उसकी जान लेने के लिए पर्याप्त तर्क था। जब स्थिति ऐसी हो तो हिंदुस्तान का ईश्वर ही मालिक है। ऐसी स्थिति में हिंदुस्तान का भविष्य बहुत अंधकारमय नज़र आता है। इन "धर्मों" ने हिंदुस्तान का बेड़ा गर्क कर दिया है। और अभी पता नहीं कि ये धार्मिक दंगे भारतवर्ष का पीछा कब छोड़ेंगे। इन दंगों ने संसार की नज़रों में भारत को बदनाम कर दिया है। और हमने देखा है कि इस अंधविश्वास के बहाव में सभी बह जाते हैं। कोई बिरला ही हिंदू, मुसलमान या सिख होता है, जो अपना दिमाग़ ठंडा रखता है, बाक़ी सबके सब धर्म के ये नामलेवा अपने नामलेवा धर्म के रोब को क़ायम रखने के लिए डंडे-लाठियाँ, तलवारें-छुरे हाथ में पकड़ लेते हैं और आपस में सर फोड़-फोड़कर मर जाते हैं। बाक़ी बचे कुछ तो फाँसी चढ़ जाते हैं और कुछ जेलों में फेंक दिए जाते हैं। इतना रक्तपात होने पर इन "धर्मजनों" पर अंग्रेज़ी सरकार का डंडा बरसता है और फिर इनके दिमाग़ का कीड़ा ठिकाने पर आ जाता है। जहाँ तक देखा गया है, इन दंगों के पीछे सांप्रदायिक नेताओं और अख़बारों का हाथ है। इस समय हिंदुस्तान के नेताओं ने ऐसी लीद की है कि चुप ही भली। वही नेता जिन्होंने भारत को स्वतंत्र कराने का बीड़ा उठाया हुआ था और जो "समान राष्ट्रीयता" और "स्वराज-स्वराज" के दमगजे मारते नहीं थकते थे, वही या तो अपने सिर छिपाए चुपचाप बैठे हैं या इसी धर्मांधता के बहाव में बह चले हैं। सिर छिपाकर बैठनेवाले नेताओं की संख्या भी कम है, लेकिन वे नेता जो सांप्रदायिक लहर में जा मिले हैं, उस तरह के तो बहुत हैं। उस तरह के तो एक ईंट उठाओ तो सौ निकलते हैं। इस समय वे नेता जो कि दिल से सभी का भला चाहते हैं, अभी बहुत थोड़े हैं और सांप्रदायिकता की ऐसी प्रबल बाढ़ आई हुई है कि वे भी इसे रोक नहीं पा रहे। ऐसा लग रहा है कि भारत में नेतृत्व का दिवाला पिट गया है। दूसरे सज्जन जो सांप्रदायिक दंगों को भड़काने में विशेष हिस्सा लेते रहे हैं, वे अख़बारवाले हैं। पत्रकारिता का व्यवसाय, जो किसी समय बहुत ऊँचा समझा जाता था, आज बहुत ही गंदा हो गया है। ये लोग एक-दूसरे के विरुद्ध बड़े मोटे-मोटे शीर्षक देकर लोगों की भावनाएँ भड़काते हैं और परस्पर सिर-फुटौव्वल करवाते हैं। एक-दो जगह ही नहीं, कितनी ही जगहों पर इसलिए दंगे हुए हैं कि स्थानीय अख़बारों ने बड़े उत्तेजनापूर्ण लेख लिखे हैं। ऐसे लेखक, जिनका दिल व दिमाग़ ऐसे दिनों में भी शांत रहा हो, बहुत कम हैं। अख़बारों का असली कर्तव्य शिक्षा देना, लोगों से संकीर्णता निकालना, सांप्रदायिक भावनाएँ हटाना, परस्पर मेल-मिलाप बढ़ाना और भारत की साझी राष्ट्रीयता बनाना था, लेकिन इन्होंने अपना मुख्य कर्तव्य अज्ञान फैलाना, संकीर्णता का प्रचार करना, सांप्रदायिक बनाना, लड़ाई-झगड़े करवाना और भारत की साझी राष्ट्रीयता को नष्ट करना बना लिया है। यही कारण है कि भारतवर्ष की वर्तमान दशा पर विचार कर आँखों से रक्त के आँसू बहने लगते हैं और दिल में सवाल उठता है कि 'भारत का बनेगा क्या?' जो लोग असहयोग के दिनों के जोश व उभार को जानते हैं, उन्हें यह स्थिति देख रोना आता है। कहाँ थे वे दिन कि स्वतंत्रता की झलक सामने दिखाई देती थी और कहाँ आज यह दिन कि स्वराज्य एक सपना मात्र बन गया है। बस यही तीसरा लाभ है, जो इन दंगों से अत्याचारियों को मिला है। वही नौकरशाही – जिसके अस्तित्व को ख़तरा पैदा हो गया था, कि आज गई, कल गई – आज अपनी जड़ें इतनी मज़बूत कर चुकी है कि उसे हिलाना कोई मामूली काम नहीं है।

यदि इन सांप्रदायिक दंगों की जड़ खोजें तो हमें इसका कारण आर्थिक ही जान पड़ता है। असहयोग के दिनों में नेताओं और पत्रकारों ने ढेरों क़ुर्बानियाँ दीं। उनकी आर्थिक दशा बिगड़ गई थी। असहयोग आंदोलन के धीमा पड़ने पर नेताओं पर अविश्वास-सा हो गया, जिससे आजकल के बहुत-से सांप्रदायिक नेताओं के धंधे चौपट हो गए। विश्व में जो भी काम होता है, उसकी तह में पेट का सवाल ज़रूर होता है। कार्ल मार्क्स के तीन बड़े सिद्धांतों में से यह एक मुख्य सिद्धांत है। इसी कारण से तबलीग, तनकीम, शुद्धी आदि संगठन शुरू हुए और इसी कारण से आज हमारी ऐसी दुर्दशा हुई, जो अवर्णनीय है। बस, सभी दंगों का इलाज यदि कोई हो सकता है तो वह भारत की आर्थिक दशा में सुधार से ही हो सकता है, क्योंकि भारत के आम लोगों की आर्थिक दशा इतनी खराब है कि एक व्यक्ति दूसरे को चवन्नी देकर किसी और को अपमानित करवा सकता है। भूख और दुख से आतुर होकर मनुष्य सभी सिद्धांत ताक पर रख देता है। सच है, मरता क्या ना करता। लेकिन वर्तमान स्थिति में आर्थिक सुधार होना अत्यंत कठिन है, क्योंकि सरकार विदेशी है और यह लोगों की स्थिति को सुधरने नहीं देती। इसीलिए लोगों को हाथ धोकर इसके पीछे पड़ जाना चाहिए और जब तक सरकार बदल ना जाए, चैन की सांस ना लेना चाहिए। लोगों को परस्पर लड़ने से रोकने के लिए वर्ग-चेतना की ज़रूरत है। ग़रीब मेहनतकश और किसानों को स्पष्ट समझा देना चाहिए कि तुम्हारे असली दुश्मन पूँजीपति हैं, इसलिए तुम्हें इनके हथकंडों से बचकर रहना चाहिए और इनके हत्थे चढ़ कुछ ना करना चाहिए। संसार के सभी ग़रीबों के, चाहे वे किसी भी जाति, रंग, धर्म या राष्ट्र के हों, अधिकार एक ही हैं। तुम्हारी भलाई इसी में है कि तुम धर्म, रंग, नस्ल, और राष्ट्रीयता और देश के भेदभाव मिटाकर एकजुट हो जाओ और सरकार की ताक़त अपने हाथ में लेने का यत्न करो। इन यत्नों में तुम्हारा नुक़सान कुछ नहीं होगा, इससे किसी दिन तुम्हारी ज़ंजीरें कट जाएँगी और तुम्हें आर्थिक स्वतंत्रता मिलेगी। जो लोग रूस का इतिहास जानते हैं, उन्हें मालूम है कि ज़ार के समय वहाँ भी ऐसी ही स्थितियाँ थीं, वहाँ भी कितने ही समुदाय थे जो परस्पर जूत-पतांग करते रहते थे। लेकिन जिस दिन से वहाँ श्रमिक-शासन हुआ है, वहाँ नक्शा ही बदल गया है। अब वहाँ कभी दंगे नहीं हुए। अब वहाँ सभी को 'इनसान' समझा जाता है, 'धर्मजन' नहीं। ज़ार के समय लोगों की आर्थिक दशा बहुत ही ख़राब थी, इसलिए सब दंगे-फसाद होते थे। लेकिन अब रूसियों की आर्थिक दशा सुधर गई है और उनमें वर्ग-चेतना आ गई है, इसलिए अब वहाँ से कभी किसी दंगे की ख़बर नहीं आई। इन दंगों में वैसे तो बड़े निराशाजनक समाचार सुनने में आते हैं, लेकिन कलकत्ते के दंगों में एक बात बहुत ख़ुशी की सुनने में आई। वह यह कि वहाँ दंगों में ट्रेड यूनियनों के मज़दूरों ने हिस्सा नहीं लिया और ना ही वे परस्पर गुत्थमगुत्था ही हुए, बल्कि सभी हिंदू-मुसलमान बड़े प्रेम से कारख़ानों आदि में उठते-बैठते और दंगे रोकने के भी यत्न करते रहे। यह इसलिए कि उनमें वर्ग-चेतना थी और वे अपने वर्गहित को अच्छी तरह पहचानते थे। वर्ग-चेतना का यही सुंदर रास्ता है, जो दंगे रोक सकता है। यह ख़ुशी का समाचार हमारे कानों को मिला है कि भारत के नौजवान अब वैसे धर्मों से जो परस्पर लड़ाना और घृणा करना सिखाते हैं, तंग आकर हाथ धो रहे हैं और उनमें इतना खुलापन आ गया है कि वे भारत के लोगों को धर्म की नज़र से हिंदू, मुसलमान या सिख-रूप में नहीं, बल्कि सभी को पहले इनसान समझते हैं, फिर भारतवासी। भारत के नौजवानों में इन विचारों के पैदा होने से पता चलता है कि भारत का भविष्य सुनहला है और भारतवासियों को इन दंगों आदि को देखकर घबराना नहीं चाहिए, बल्कि तैयार-बर-तैयार हो यत्न करना चाहिए कि ऐसा वातावरण बन जाए, जिससे कि दंगे हों ही नहीं। 1914-15 के शहीदों ने धर्म को राजनीति से अलग कर दिया था। वे समझते थे कि धर्म व्यक्ति का व्यक्तिगत मामला है, इसमें दूसरे का कोई दख़ल नहीं। ना ही इसे राजनीति में घुसाना चाहिए, क्योंकि यह सरबत को मिलकर एक जगह काम नहीं करने देता। इसीलिए ग़दर पार्टी-जैसे आंदोलन एकजुट और एकजान रहे, जिसमें सिख बढ़-चढ़कर फाँसियों पर चढ़े और हिंदू-मुसलमान भी पीछे नहीं रहे। इस समय कुछ भारतीय नेता भी मैदान में उतरे हैं, जो धर्म को राजनीति से अलग करना चाहते हैं। झगड़ा मिटाने का यह भी एक सुंदर इलाज है और हम इसका समर्थन करते हैं। यदि धर्म को अलग कर दिया जाए तो राजनीति पर हम सभी इकट्ठे हो सकते हैं। धर्मों में हम चाहे अलग-अलग ही रहें। हमारा ख़याल है कि भारत के सच्चे हमदर्द हमारे बताए इलाज पर ज़रूर विचार करेंगे और भारत का इस समय जो आत्मघात हो रहा है, उससे हमें बचा लेंगे।

– जून 1927

लाखों जर्मन मज़दूर संघर्ष की राह पर

जर्मनी में इस समय लाखों मज़दूर अपनी जायज़ माँगों को लेकर हड़तालें कर रहे हैं, जो जर्मन हुक्मरानों के लिए बड़ी चुनौती बनी हुई है। इन हड़तालों में मुख्य तौर पर रेलवे ड्राइवर और अन्य ट्रांसपोर्ट मज़दूर शामिल हैं। मज़दूर काम के घंटे कम करने से लेकर, वेतन बढ़ाने, सामाजिक सुरक्षा के दायरे को बड़ा करने और काम की परिस्थितियों को बेहतर बनाने की माँग कर रहे हैं। उल्लेखनीय है कि पिछले दो सालों से, ख़ासकर रूस-यूक्रेन युद्ध शुरू होने के बाद जर्मनी में ऊर्जा की क़ीमतें तेज़ी से बढ़ी हैं। इससे औद्योगिक लागत बढ़ी है लेकिन इसका बोझ जर्मन मेहनतकश जनता पर डाल दिया गया। जर्मन अर्थव्यवस्था साल 2023 में 0.3% तक सिकुड़ गई और जर्मन केंद्रीय बैंक की रिपोर्ट के मुताबिक़ साल 2024 की पहली तिमाही में भी अर्थव्यवस्था में मंदी का दौर जारी रहेगा। जर्मनी में महँगाई बढ़ने के कारण, मज़दूरों के वेतन में वृद्धि के बावजूद उनके असल वेतन पहले के मुक़ाबले और कम हो गए हैं। इस कारण जर्मनी में जहाँ पिछले काफ़ी समय से पश्चिमी यूरोप के अन्य देशों के मुक़ाबले हड़तालों की संख्या काफ़ी कम थी, वहाँ भी अब मज़दूर वर्ग ने अँगड़ाई लेनी शुरू कर दी है। जर्मनी में राजनीतिक हड़तालों पर पाबंदी है और केवल ट्रेड यूनियनें ही हड़ताल का आह्वान कर सकती हैं। अब जर्मन पूँजीवादी हुक्मरानों को मज़दूरों के ये बचे-खुचे अधिकार भी चुभने लगे हैं और वे हड़ताल को क़ाबू करने के लिए और भी सख़्त क़ानून बनाने की माँग कर रहे हैं। सख़्त क़ानूनों की इन धमकियों के बावजूद भी मज़दूर अपनी माँगों पर डटे हुए हैं।

साल 2022 में शुरू हुए रूस-यूक्रेन युद्ध के बाद से ही जर्मन अर्थव्यवस्था काफ़ी समस्याओं से जूझ रही है। जर्मन उद्योग रूस से आने वाली सस्ती प्रकृतिक गैस पर बहुत ज़्यादा निर्भर था। इसके अलावा सर्दियों में घरों को गर्म रखने के लिए भी गैस का इस्तेमाल किया जाता है। रूस-यूक्रेन युद्ध के बाद जर्मनी और रूस के बीच हुए ऊर्जा समझौते खटाई में पड़ गए, जिस कारण जर्मनी के लिए सस्ती ऊर्जा का यह स्रोत काफ़ी हद तक ख़त्म हो गया। रूस से जर्मनी जाने वाली नोर्ड स्ट्रीम पाइप की तोड़-फोड़ के बाद (जिसके लिए रूस अमेरिका को ज़िम्मेदार ठहरा रहा है) रूस से जर्मनी में प्राकृतिक गैस का निर्यात नहीं हो रहा है। साल 2022 से पहले जर्मनी अपनी ज़रूरत की 55% प्राकृतिक गैस रूस से आयात करता था, जिसे रूस ने अगस्त 2023 में पूरी तरह बंद कर दिया। इन कारणों से जर्मन अर्थव्यवस्था साल 2022 से ही समस्याओं का सामना कर रही है। साल 2022 की आख़िरी तिमाही के दौरान जर्मनी का कुल घरेलू उत्पादन 0.4% तक सिकुड़ा और पूरे 2023 में इस उत्पादन में कोई भी वृद्धि नहीं हुई। साल 2023 की आख़िरी तिमाही में जर्मन अर्थव्यवस्था 0.3% तक सिकुड़ गई। इस सबका नतीजा जर्मनी में आम जनता की खपत की चीज़ों की क़ीमतों में वृद्धि के रूप में निकला है। जर्मनी में वेतन 5.6% बढ़े जबकि मुद्रास्फीति दर 6% होने से यह असल में और भी कम हो गए, जिससे जनता का जीवन स्तर पहले के मुक़ाबले नीचे गिर रहा है। साल 2023 की दूसरी तिमाही के दौरान खाने-पीने की चीज़ों में 11% की बढ़ोतरी दर्ज की गई।

इसके अलावा, जर्मनी में बेरोज़गारी भी बढ़ रही है। जर्मन हुक्मरान सरकारी क्षेत्र में नौकरियों को लगातार कम कर रहे हैं। एक रेलवे मैनेजर के मुताबिक़ एक पूरी रेल को सँभालने के लिए पहले 5 से 6 लोग होते थे, जो काम अब सिर्फ़ उसे अकेली को ही करना पड़ रहा है। एक और हड़ताली रेलवे मज़दूर के मुताबिक़ पिछले काफ़ी समय से सरकार सरकारी रेलवे को बर्बाद करने के राह पर है। सरकार नई रेलवे पटरियाँ नहीं बिछा रही और ना ही रेल के नए डिब्बों के उत्पादन और उनकी देखभाल पर कोई ध्यान ही दिया जा रहा है। रेलवे मज़दूरों को दिन में औसत 12 घंटे काम करना पड़ रहा है, जिसका प्रमुख कारण स्टाफ़ की कमी है। इस समय रेलवे में कम से कम 20% और स्टाफ़ की ज़रूरत है। जर्मन रेलवे मज़दूरों की यूनियन एकसमान वेतन और हफ़्ते में काम के घंटे 38 से घटाकर 35 करने की माँग कर रही है। इस हड़ताल के कारण जर्मन हुक्मरानों को करोड़ों डॉलरों का नुक़सान हो रहा है, जिसके चलते जर्मन सरकार पर इस समय काफ़ी दबाव है।

इसके अलावा ट्रक ड्राइवर भी अपनी माँगों को लेकर हड़ताल कर रहे हैं। जर्मनी में ही 1500 से अधिक ट्रक ड्राइवरों ने बर्लिन में एकजुट होकर सड़कें जाम कीं। ट्रक ड्राइवर टोल क़ीमतें घटाने और सरकार से सड़कों और अन्य बुनियादी ढाँचे पर ख़र्च बढ़ाने की माँग कर रहे हैं। हवाई अड्डों के मज़दूरों ने भी वेतन बढ़ाने के लिए 1 फ़रवरी को 24 घंटे की हड़ताल की।

जर्मन मज़दूरों की ये हड़तालें सराहनीय क़दम है, लेकिन इसके साथ ही इन संघर्षों की कुछ सीमाएँ भी हैं। इन हड़तालों का नेतृत्व समझौतावादी ट्रेड यूनियनों के हाथ में होने से ना तो हुक्मरानों पर एक हद से ज़्यादा दबाव बनता है और ना ही कुल पूँजीवादी व्यवस्था के विरुद्ध मज़दूरों की राजनीतिक लामबंदी होती है। जर्मनी में मज़दूरों की राजनीतिक हड़ताल ग़ैर-क़ानूनी है। केवल ट्रेड यूनियनें ही हड़ताल का आह्वान कर सकती हैं और वे एक ही समय कई क्षेत्रों की एकसाथ हड़ताल नहीं कर सकतीं। इससे पता चलता है कि जर्मनी जैसे मुक़ाबलतन ज़्यादा जनवाद वाले पूँजीवादी देशों में भी मज़दूरों के लिए जनवाद का दायरा बहुत सीमित है। जर्मनी में काफ़ी समय के बाद ही मज़दूरों की हड़तालें शुरू हुई हैं, लेकिन इससे भी पूँजीवादी हुक्मरानों को हाथों-पैरों की पड़ी हुई है। जर्मन पूँजीपति यूनियन को और "लचीला" होने और "समाज के प्रति और ज़िम्मेदार होने" की नसीहतें दे रहे हैं। पूँजीपति सामाजिक-जनवादी पार्टी के नेतृत्व वाली सरकार पर भी हड़तालों को रोकने के लिए अधिक सख़्त क़ानून लाने का दबाव बना रहे हैं। इन तथ्यों से पता चलता है कि हुक्मरान मज़दूरों की छोटी-सी अँगड़ाई से भी कितना घबराते हैं। इस पूँजीवादी व्यवस्था में मज़दूर वर्ग ही वह ताक़त है, जो इस व्यवस्था की मुख्य नस यानी मुनाफ़े पर चोट मारकर पूरी व्यवस्था को जाम कर सकता है। जर्मनी में मज़दूर वर्ग के शानदार संगठित संघर्षों का इतिहास रहा है। आज जर्मनी में मज़दूर वर्ग की बिखरी हुई ताक़त को संगठित करने और क्रांतिकारी-राजनीतिक नेतृत्व की ज़रूरत है।

– गुरप्रीत, अमृतसर

पीस रेट पर काम करने वाले मज़दूरों का भयानक शोषण

आज की दुनिया मज़दूरों के श्रम से ही चलती है, लेकिन मौजूदा पूँजीवादी व्यवस्था में मज़दूर ही सबसे ज़्यादा लूट का शिकार हैं। पूँजीपतियों द्वारा श्रम का शोषण केवल कारख़ानों तक ही सीमित नहीं है, बल्कि 'आउटसोर्स' काम के ज़रिए पूँजीपति अपने घरों पर ही रहकर कारख़ानों के लिए काम करने वाले मज़दूरों का भी शोषण करते हैं। आज मैं आपके साथ एक ऐसा ही अनुभव साझा करना चाहता हूँ।

हाल ही में चंडीगढ़ के मज़दूर वर्ग के इलाक़े हल्लोमाजरा में क्रांतिकारी अख़बार 'मुक्ति संग्राम' के प्रचार के दौरान मेरी मुलाक़ात कुछ ऐसी महिलाओं से हुई जो दिन-भर बारीक और कठिन काम करती रहती हैं। अक्सर इन क्षेत्रों में महिलाएँ नट-बोल्ट कसने, रबड़ काटने, लिफ़ाफ़े या बक्से पैक करने और खाट बुनने जैसे काम कर रही होती हैं। ये सभी सामान फ़ैक्टरी से बनकर इन इलाक़ों में आते हैं और फिर इन्हें जोड़ने, काटने का बारीक काम इन मज़दूरों द्वारा पीस रेट पर किया जाता है। पूँजीपतियों द्वारा पीस रेट पर काम कराना बेहद कम वेतन पर मज़दूरों को लूटने का बहुत कारगर तरीक़ा है। आइए, मेहनतकशों को पूरी तरह निचोड़ देने वाले इस काम को थोड़ा और बारीकी से समझते हैं।

मज़दूरों को मिलने वाले नट और बोल्ट अगल-अलग होते हैं। बोल्ट पर वॉशर लगाकर नट कस दिया जाता है। ऐसे दो सेट एक लिफ़ाफ़े में डालकर लिफ़ाफ़ा दिए/मोमबत्ती से सेंककर पैक कर दिया जाता है। अगर कोई लिफ़ाफ़ा ठीक से पैक नहीं किया गया हो, तो उसे रद्द कर दिया जाता है। इस तरह के एक किलो पैकेट बनाने पर लगभग 10 रुपए ही मिलते हैं। एक किलो में करीब 150 पैकेट होते हैं। यानी 300 नट-बोल्ट-वॉशर जोड़ने, दो-दो सेट लिफ़ाफ़े में डालने, डेढ़ सौ लिफ़ाफ़ा बंद करने के महज़ 10 रुपए या इससे भी कम! लेकिन अगर आप वही पैकेट बाज़ार में ख़रीदने जाएँगे तो आपको एक पैकेट ही करीब दस रुपए में मिलेगा। दिन में छह-सात घंटे काम करके मुश्किल से छह-सात किलो के पैकेट तैयार होते हैं, जिनके मुश्किल से 60-70 रुपए मिलते हैं। खाना, साफ़-सफ़ाई, कपड़े धोने, बच्चे सँभालने जैसे घर के अन्य सारे काम करते हुए महीने में सिर्फ़ 24-25 सौ रुपए से ज़्यादा नहीं बन पाते! और अगर महिलाएँ बच्चों को साथ लगातार काम करें तो भी कमाई 3500 रुपए से आगे नहीं बढ़ पाती।

जब मैंने इन महिलाओं से पूछा कि वे यह काम इतने कम रेट पर क्यों करती हैं? तो उन्होंने कहा कि "आज के समय में एक व्यक्ति की कमाई से घर का ख़र्च चलाना मुश्किल है। हम ज़्यादा वेतन के लिए फ़ैक्टरी में जाकर काम नहीं कर सकते, क्योंकि घर पर बच्चे अभी छोटे हैं और उनका ख़याल रखना होता है। इसलिए हम घर पर रहकर ही यह काम करते हैं और अक्सर अपने बच्चों को भी अपने साथ काम पर लगा लेती हैं। इस तरह घर में आदमी के वेतन के अलावा 3000-3500 रुपए जुड़ जाते हैं, जिससे कुछ ना हो तो कमरे का किराया ही निकल जाता है।"

सोचने की बात यह है कि जो बच्चे बाहर जाकर खेलने-कूदने और खाने-पीने की उम्र के हैं, उन्हें अक्सर घर पर रहकर

(अगले पन्ने पर जारी)

(पिछले पन्ने से आगे)

काम में हाथ बँटाने को मजबूर होना पड़ता है। कहने की ज़रूरत नहीं है कि बच्चों में भी यह काम ख़ासतौर पर लड़कियों के ही हिस्से आता है। इस लूट में पूँजीपति के साथ उसका बिचौलिया ठेकेदार भी शामिल होता है, क्योंकि वह महिलाओं से कम से कम पैसे पर काम कराकर अपना कमीशन बढ़ाने की कोशिश करता है।

इस काम में इन कामकाजी महिलाओं का श्रम तो लूटा ही जाता है, साथ ही यह बारीक काम उन्हें शारीरिक रूप से भी निचोड़ देता है। ऐसी ही एक महिला संगीता हैं, जिनकी उम्र 47 साल है। वे बताती हैं कि वे तीन साल से यह काम कर रही हैं। मोमबत्ती की रोशनी में काम करने से उनकी आँखों पर काफ़ी असर पड़ा है; और अब पिछले दो महीने से उनकी आँखों से लगातार पानी गिर रहा है। पीस रेट की यह प्रक्रिया मज़दूरों के बीच इतनी अमानवीय दौड़ को जन्म देती है कि वे दिन का हर मिनट बचाकर ज़्यादा से ज़्यादा पीस तैयार करने की कोशिश करते हैं, ताकि वे चार पैसे अधिक कमा सकें। कई ऐसी भी महिलाएँ हैं, जो दिन के दौरान कारख़ानों या अन्य जगहों पर काम करती हैं और शाम को वापस आकर फिर घर के काम के अलावा एक या दो घंटे के लिए पीस रेट का काम करती हैं।

चौबीसों घंटे रोज़ी-रोटी की चिंता के अलावा भी ज़िंदगी में छुट्टी, मनोरंजन, टहलना, पढ़ाई आदि ज़रूरी है। इस सबके बारे में सोचने का भी समय उनके पास नहीं है। हाँ, अगर उन्हें थोड़ा-सा समय मिल जाए तो वे अपने पड़ोसियों से इधर-उधर की, घर-बार की बातचीत करके अपना मन हल्का कर लेती हैं। ये सभी मज़दूर महिलाएँ अपने घरों में ही यह काम करती हैं, जिसके कारण उनका एक-दूसरे से कोई सीधा संपर्क नहीं हो पाता। इसलिए सामूहिक चेतना का विकास भी नहीं हो पाता। वे अपनी मज़दूरी बढ़ाने या अन्य अधिकारों के लिए संगठित भी नहीं हो पाते। काग़ज़ों पर दर्ज थोड़े-बहुत श्रम क़ानूनों के बारे में भी उन्हें कोई जानकारी नहीं होती, इन क़ानूनों को लागू करवाना तो अभी कोसों दूर है। इन कामकाजी महिलाओं के इस बिखराव का फ़ायदा पूँजीपति उठाते हैं।

घर-घर पीस रेट पर आउटसोर्सिंग कर मज़दूरों को लूटने का यह बहुत ही नीच तरीक़ा है। लेकिन इस पूँजीवादी ढाँचे का यही स्वभाव है कि पूँजीपतियों के मुनाफ़े बढ़ाने के लिए मज़दूरों को लूटने के नित नए और घटिया तरीक़े खोजे जाते हैं। इसलिए इस ढाँचे से मज़दूरों की भलाई की, उनकी मुक्ति की कोई आशा नहीं की जा सकती। मज़दूरों को इस ग़ुलामी से मुक्ति दिलाने का एकमात्र तरीक़ा यह है कि वे इस मुनाफ़ाखोर ढाँचे के ख़िलाफ़ संगठित होकर संघर्ष करें और मज़दूरों के राज्य वाले समाजवाद समाज के निर्माण तक संघर्ष करें।

– हर्ष, चंडीगढ़

कोरोना लॉकडाउन के बाद तेज़ी से निजीकरण की ओर बढ़ती भारत की स्वास्थ्य व्यवस्था

भारत में सरकारी स्वास्थ्य व्यवस्था दिन-ब-दिन बदतर होती जा रही है। दूसरी ओर स्वास्थ्य सेवाओं के क्षेत्र में निजी कंपनियों की दख़लअंदाज़ी लगातार बढ़ती जा रही है। कोरोना घटनाक्रम के बाद निजी कंपनियों द्वारा स्वास्थ्य क्षेत्र में पूँजी का निवेश काफ़ी तेज़ी से हुआ है। वैसे तो यह पूँजीवादी व्यवस्था के वजूद से जुड़ा लक्षण है कि प्राकृतिक शक्तियों की बड़ी तबाही में यह अपने संकटों का आरज़ी हल ढूँढ़ती है। यही कारण है कि बड़े विश्व युद्धों या महामारियों के बाद इस व्यवस्था में ऐसी तेज़ी के दौर आते रहे हैं। इस बार भी कोरोना के बहाने सरकार द्वारा देश में किए गए लॉकडाउन और इसके नतीजे कुछ पूँजीपतियों के लिए लाभकारी साबित हुए।

सरकार द्वारा कोरोना के नाम पर फैलाई गई दहशत ने लोगों की बड़ी आबादी को अस्पतालों का रास्ता दिखाया। लेकिन साथ ही भारत की जर्जर हो चुकी सरकारी स्वास्थ्य व्यवस्था का चेहरा भी सामने आ गया। सरकारों की बेरुखी और बेशर्मी भी इस बहाने और ज़्यादा खुलकर सामने आ गई। इसके बाद भी सरकार ने सरकारी स्वास्थ्य व्यवस्था को मज़बूत बनाने के लिए अभी तक कोई यत्न नहीं किए। दूसरी ओर इस सारे घटनाक्रम के बाद निजी निवेशकों को भारत का स्वास्थ्य क्षेत्र एक सोने की खान नज़र आने लगा। यही कारण है कि कोरोना के बाद भारत में स्वास्थ्य क्षेत्र में निजी निवेश में काफ़ी तेज़ी नज़र आ रही है। भारत में चल रहे अस्पतालों को हथियाने की जो दौड़ चल रही है, उसमें इतनी तेज़ी पहले कभी नहीं थी। ऐसे समय में जब अन्य क्षेत्रों में यहाँ विदेशी पूँजी की कमी चल रही है, स्वास्थ्य क्षेत्र में पूँजी का निवेश बढ़ रहा है। सिंगापुर ने 2 अरब डॉलर यानी 16,400 करोड़ रुपए से मनीपाल अस्पताल में फ़ैसलाकुन हिस्सेदारी ख़रीद ली है। केवल एक अस्पताल के लिए इतनी क़ीमत लगाने के स्वास्थ्य क्षेत्र में निजी निवेशकों के लिए लाज़िमी ही कुछ मायने हैं। इसके बाद कोलकाता के अस्पतालों की एक श्रृंखला 'इमामी ग्रुप' का 84% हिस्सा मनीपाल ने 24,000 करोड़ रुपए में ख़रीद लिया। निजी क्षेत्र की एक बड़ी मछली ब्लैक स्टोन ने क्वालिटी केयर अस्पताल में 73% हिस्सा ख़रीद लिया। केयर अस्पताल ने भी साथ ही साथ केरल के एक अस्पताल की श्रृंखला 'किम्ज़ हेल्थ' और मध्य पूर्व की एक अस्पताल श्रृंखला का बड़ा हिस्सा ख़रीद लिया। डी.एम. हेल्थकेयर के खाड़ी देशों वाले कारोबार को अल्फ़ा जीसीसी ने ख़रीद लिया। ओंटारियो टीचर्स ने भारत में 'सह्यादरी अस्पताल' को ख़रीद लिया। सहारा हेल्थकेयर पर लगभग 900 करोड़ की क़ीमत से मैक्सकेयर ने कब्ज़ा कर लिया। अब हालात ये बने हुए हैं कि कुछ बड़े निवेशक भारत के स्वास्थ्य क्षेत्र के कारोबार पर नज़र रखे बैठे हैं। हैदराबाद का ओमेगा अस्पताल भी मोगन स्टेनले को अपनी हिस्सेदारी बेचने के लिए तैयार बैठा है। यहाँ बता दें कि स्टेनले भी ब्लैक स्टोन जैसे निजी क्षेत्र की एक बढ़ी निवेशक है। हैदराबाद का रिनोवा ग्रुप, पुणे का लोकमान्य अस्पताल, गुजरात की सनशाइन ग्लोबल अस्पताल श्रृंखला, केरल का बेबी मेमोरियल अस्पताल आदि अनेकों निजी क्षेत्र के बड़े निवेशकों के हाथ बिकने के किनारे हैं। और ये आँकड़े पूरे भारत के नहीं हैं, बल्कि केवल इसके कुछ बड़े शहरों के हैं। एक रिपोर्ट के मुताबिक़ कोरोना के बाद भारत के स्वास्थ्य क्षेत्र में निजी निवेश 4 अरब डॉलर हो गया है जो इससे पहले 1 अरब डॉलर था, यानी निजी निवेश में सीधा 4 गुना बढ़ोतरी हुई है। इस क्षेत्र में, ख़ासकर अगर फ़ार्मा (दवा) कंपनियों पर नज़र डालें तो यहाँ पूँजी का बढ़ता केंद्रीयकरण स्पष्ट देखा जा सकता है। डिटर्जेंट निर्माता के तौर पर जानी जाती कंपनी निरमा ने स्वास्थ्य क्षेत्र की बड़ी कंपनी ग्लेनमार्क लाइफ़ साइंसिज़ (जी.एल.एस.) को ख़रीद लिया है। इसी प्रकार एरिस लाइफ़ साइंसिज़ ने दवाइयाँ बनाने वाली कंपनी बायोकॉन बायोलॉजिक्स का एक बड़ा हिस्सा ख़रीद लिया। इसी प्रकार इंका लैब और यूनिकैम का विलय हो गया, डू रेड्डी और मेने फ़ार्मा का भी विलय हो गया।

दूसरी ओर सरकारी स्वास्थ्य व्यवस्था का हाल यह है कि सरकार अपनी आयुष्मान जैसी योजनाएँ भी निजी अस्पतालों के ज़रिए ही चला रही है। इसके दो कारण हैं। एक तो यह कि स्वास्थ्य क्षेत्र के लिए ज़रूरी सरकारी बुनियादी ढाँचा खड़ा करना सरकार को जनता को रेवड़ियाँ बाँटना ही लगता है। दूसरी ओर आयुष्मान जैसी योजनाओं के द्वारा सरकार, जनता पर टैक्स लगाकर इकट्ठा किए गए धन के ज़रिए, निजी अस्पतालों के मुनाफ़ों की गारंटी करती है। इसलिए ऐसी योजनाओं का मक़सद ही सरकारी स्वास्थ्य व्यवस्था को जर्जर करना और स्वास्थ्य क्षेत्र में निजी दख़लअंदाजी को जायज़ ठहराना और बढ़ावा देना होता है। एक ओर मोदी देश को आत्मनिर्भर बनाने, विश्व की सबसे बड़ी अर्थव्यवस्था बनाने के ढोल पीटता है। दूसरी ओर हालात ये हैं कि सबसे बुनियादी, जीवन रक्षक दवाइयों के मामले में 70-80% दवाइयों के लिए भारत चीन जैसे मुल्क़ों पर निर्भर है।

बीते समय के दौरान दवाइयों के आयात में रिकॉर्ड तोड़ बढ़ोतरी हुई है। कोरोना के बाद पैदा हुए माहौल में भारत के स्वास्थ्य क्षेत्र की कमियाँ सामने आ गई हैं। लेकिन इसके बाद भी सरकार ने सरकारी स्वास्थ्य व्यवस्था को मज़बूत करने के लिए कुछ नहीं किया। हाँ पूँजीपतियों को इस क्षेत्र में मुनाफ़े की खदान ज़रूर मिल गई है, जिसे हड़पने में सरकार पूँजीपतियों का पूरा सहयोग कर रही है। यही कारण है कि सरकारी स्वास्थ्य व्यवस्था को मज़बूत करने की बजाए निजी क्षेत्र को बढ़ावा दिया जा रहा है। एक रिपोर्ट के मुताबिक़ लगभग 4800 करोड़ डॉलर के कारोबार की यह "मंडी" सरकारों ने पूँजीपतियों को थाली में परोस कर दे दी है। नतीजे के तौर पर स्वास्थ्य सेवाओं का क्षेत्र तेज़ी से निजीकरण की ओर बढ़ रहा है।

यहाँ एक और तथ्य भी महत्वपूर्ण है। वह यह है कि सरकारों द्वारा स्वास्थ्य क्षेत्र में निजीकरण के लिए परोस कर दी गई इस "मंडी" में इनके ही अंदाज़ों के मुताबिक़ विकास दर 12-14% के नज़दीक है, जो भारत के सकल घरेलू उत्पादन की विकास दर से कहीं ज़्यादा है। अब निजी अस्पतालों में ऊँचे दर्जे की सुविधाएँ हुआ करेंगी, लेकिन केवल उनके लिए जिनकी जेब में पैसा है।

भारत में सरकारी स्वास्थ्य व्यवस्था के निर्माण के लिए पहले हेल्थ प्लान की रूपरेखा जोसेफ़ विलियम भोरे के नेतृत्व में भोरे कमेटी द्वारा 1943 में पेश की गई थी। भोरे कमेटी की यह रिपोर्ट भारत की स्वास्थ्य व्यवस्था को मज़बूत बनाने के नज़रिए से बेहद महत्वपूर्ण माना जाने वाला एक दस्तावेज़ था। भारत की स्वास्थ्य व्यवस्था की प्राइमरी, सेकेंडरी और टर्शरी के तौर पर इस रिपोर्ट में ही दर्जाबंदी की गई थी। अंतरराष्ट्रीय स्वास्थ्य संस्था ने थोड़ा समय पहले ही जारी की एक रिपोर्ट में यह बताया है कि भोरे कमेटी ने भारत में सरकारी स्वास्थ्य व्यवस्था को मज़बूत करने के लिए,

(अगले पन्ने पर जारी)

(पिछले पन्ने से आगे)

1943 से 1953 तक, 10 सालों तक के जो उद्देश्य सामने रखे थे, वे अभी तक भी, 76 सालों में भी, पूरे नहीं हो सके।

संक्षेप में पंजाब की बात भी कर ही लें। सरकारी स्वास्थ्य व्यवस्था का तो वही हाल है, जो अन्य राज्यों में है। लेकिन भगवंत मान और इसकी पार्टी स्कूलों के तरह ही सरकारी अस्पतालों की व्यवस्था को दुरुस्त करने की अपनी कोशिशों के कसीदे पढ़ने से नहीं थकते। इसलिए स्वास्थ्य व्यवस्था से जुड़ी इनकी सच्चाई को भी जनता के सामने नंगा करना ज़रूरी है। लोकसभा चुनाव जैसे-जैसे नज़दीक आ रहे हैं, सारी पार्टियाँ अपने-अपने वोट बैंक पक्के करने के लिए एड़ी-चोटी का ज़ोर लगा रही हैं। यही काम भगवंत मान भी पंजाब में ज़ोर-शोर से कर रहा है। हम केवल स्वास्थ्य क्षेत्र की मिसाल के ज़रिए ही देखेंगे कि कैसे अपने राजनीतिक हितों की ख़ातिर ये लोगों की ज़िंदगियों तक को दाँव पर लगा देते हैं। भगवंत मान सरकार सरकारी अस्पतालों में मौजूद ख़ामियों को दूर करने का दिखावा कर रही है। सरकारी अस्पतालों के डॉक्टरों को सख़्त हिदायतें हैं कि केवल अस्पतालों में मौजूद दवाइयाँ ही लिखीं और दी जाएँ। बाहर से देखने को तो यह ऐसे लगता है कि सरकार काफ़ी फ़िक्रमंद है कि लोग प्राइवेट महँगी दवाओं की बजाय सरकारी सस्ती दवाएँ ले सकें। लेकिन हक़ीक़त यह है कि सरकार अस्पतालों में ज़रूरत की दवाइयाँ भेजी ही नहीं जा रहीं। एक सरकारी विशेषज्ञ डाक्टर के बताने के मुताबिक़ उसके विभाग में ज़रूरत की दवाइयों की गिनती 80 है, जिन्हें मुहैया करवाने की उन्होंने बार-बार माँग की है, लेकिन दो ही दवाइयाँ उसके विभाग में उपलब्ध करवाई गई हैं। अब इमर्जेंसी जैसे विभागों में ऐसी भयंकर खामियाँ लोगों की मौत का कारण बनती हैं। लेकिन सरकारें तो एक तीर से दो शिकार कर रही हैं। एक ओर तो सरकारी स्वास्थ्य व्यवस्था को कमज़ोर किया जा रहा है, ज़रूरत की दवाइयाँ तक उपलब्ध नहीं करवाई जा रहीं और दूसरी ओर इस सबके लिए डॉक्टरों को ज़िम्मेदार ठहराकर अपना आप बचाया जा रहा है। हूबहू उसी प्रकार जैसे सरकारी शिक्षा व्यवस्था को कमज़ोर करके ज़िम्मेदार सरकार की जगह अध्यापकों को ठहराया जा रहा है। पंजाब के सरकारी डॉक्टरों के संगठन 'पी.सी.एम.एस. एसोसिएशन, पंजाब' द्वारा सरकार की इस दोगली नीति का विरोध करते हुए अस्पतालों में सारी ज़रूरत की दवाइयाँ मुहैया करवाने की माँग भी की गई है। यह एक सकारात्मक बात है। लेकिन पूँजीवादी व्यवस्था में सार्वजनिक स्वास्थ्य सुविधाओं की नियति बुनियादी मसला है।

दूसरी ओर समाजवादी चीन की मिसाल है। लंदन का एक सर्जन, डॉक्टर जोशुआ सैमुअल हॉर्न, जिसने समाजवादी चीन में काम के अपने तजुर्बे साझा करते हुए न्यूयॉर्क में दिए गए एक भाषण में चीन की बेहतरीन सार्वजनिक स्वास्थ्य व्यवस्था का ज़िक्र करते हुए बताया था कि कैसे वहाँ "डॉक्टरों ने ऐसी बीमारियों का बड़े स्तर पर इलाज करने में आसानी से ही कामयाबी हासिल की, जिनसे छुटकारा पाने के बारे में विश्व के उस समय के पूँजीवादी मुल्क़ सोच भी नहीं सकते थे। समाजवादी चीन में डॉक्टर काटे गए अंगों को जोड़ने की तकनीक को केवल इस कारण विकसित कर पाए, क्योंकि वहाँ की व्यवस्था के केंद्र में मुनाफ़ा नहीं मनुष्य था।" वे बताते हैं कि कैसे एक मज़दूर अपने साथी का कटा हुआ हाथ लेकर उनके पास आया और उसे जोड़ने के लिए बोला। कैसे डॉक्टरों ने इस पर जल्दी से काम करना शुरू किया, जिसमें उनके सामने बड़ी दिक़्क़त थी अंगों को जोड़ने के लिए इस्तेमाल किए जाने वाले बारीक धागे की जो बेहद बारीक लेकिन साथ ही बेहद मज़बूत भी हो और शरीर के अंगों को हानि पहुँचाने वाला भी ना हो। इसलिए वह पीकिंग की नायलॉन की कमीज़ें बनाने वाली फ़ैक्टरी के पास गए और अपनी ज़रूरत बताई। उसी वक्त उस फ़ैक्टरी का सारे का सारा खोज और विकास विभाग इस समस्या का हल खोजने में जुट गया और जल्द ही डॉक्टरों को ज़रूरत का धागा मुहैया करवा दिया गया। यह उस समय की बात है जब पूरे विश्व में ऐसा धागा अन्य किसी देश में मौजूद नहीं था। डॉक्टर जोशुआ ने भाषण में कहा कि डॉक्टरों ने यही माँग अगर इंग्लैंड या अमेरिका जैसे देश की किसी कमीज़ बनाने वाली कंपनी के पास रखी होती, तो ठुकरा दी जाती, क्योंकि उन देशों में उत्पादन केवल मुनाफ़े के लिए होता था। लेकिन समाजवादी चीन के केंद्र में मुनाफ़ा नहीं मनुष्य थे और यही कारण था कि वहाँ की स्वास्थ्य व्यवस्था ने अनेकों मिसालें क़ायम करते हुए बड़ी प्राप्तियाँ हासिल कीं।

तेज़ी से स्वास्थ्य क्षेत्र के निजीकरण की ओर बढ़ते भारत में भी बहुत बड़ी आबादी के स्वास्थ्य का ख़याल रखना, मुनाफ़े पर टिकी इस पूँजीवादी व्यवस्था के बस की बात नहीं है। इसलिए ज़रूरत है एक ऐसे समाजवादी समाज के निर्माण की तैयारी में जुट जाने की, जिसमें सब कुछ जनता के लिए होगा ना कि मुनाफ़े के लिए। इसलिए सरकारी स्वास्थ्य सेवाओं को मज़बूत करने और स्वास्थ्य क्षेत्र में हो रहे निजीकरण के विरुद्ध लड़ाई को इस पूरी व्यवस्था को पलट देने की लड़ाई के साथ जोड़ना होगा।

– अमन, संतनगर

भारत पर बढ़ता क़र्ज़

दिसंबर 2023 में एक रिपोर्ट प्रकाशित की गई, जिसमें यह सामने आया कि भारत के सिर पर क़र्ज़ ख़तरे के निशान पर पहुँच चुका है। इस समय भारत पर कुल क़र्ज़ सकल घरेलू उत्पादन का 100 प्रतिशत होने वाला है। इसमें से 155 करोड़ का क़र्ज़ यूनियन सरकार ने और सकल घरेलू उत्पादन का 28 प्रतिशत क़र्ज़ राज्य सरकारों ने लिया हुआ है। आइए विस्तार से क़र्ज़ के बारे में, इसके बढ़ने के कारणों और आम लोगों पर इसके असर के बारे में बात करते हैं।

नवउदारवादी नीतियाँ और क़र्ज़ विस्तार

पूँजीवादी व्यवस्था में हर सरकार की यही कोशिश होती है कि पूँजीपतियों को ज़्यादा से ज़्यादा मुनाफ़ा कैसे दिया जाए। इसलिए सरकार की आर्थिक नीतियाँ पूँजीपतियों के पक्ष में बनती हैं। वर्ष 1980 तक भारत का कुल क़र्ज़ इसके सकल घरेलू उत्पादन का 47.7 प्रतिशत था। 1991-92 की नवउदारवादी नीतियों के बाद पूँजीपतियों के मुनाफ़े को सहारा देने के लिए सरकार ने क़र्ज़ लिया था। वर्ष 2014 में यह क़र्ज़ सकल घरेलू उत्पादन के 67 प्रतिशत के लगभग पहुँच गया था और पिछले 10 वर्षों में यह बढ़कर 90 प्रतिशत तक पहुँच चुका है। पूँजीवादी आर्थिक विशेषज्ञों के मुताबिक़ भी किसी देश का क़र्ज़ उसके सकल घरेलू उत्पादन के 60 प्रतिशत से ज़्यादा नहीं होना चाहिए। पिछले सिर्फ़ 10 वर्षों के दौरान मोदी सरकार ने पूँजीपतियों का 13 लाख करोड़ रुपए का क़र्ज़ माफ़ किया है। भारत में सरकार पर बढ़े क़र्ज़ का ग्राफ़ आप नीचे तस्वीर में देख सकते हैं।

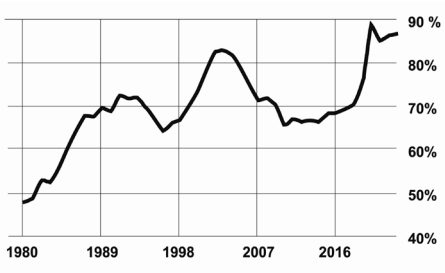

सकल घरेलू उत्पादन के प्रतिशत के तौर पर कर्ज़ा

(स्रोत - Trading Economics)

पूँजीवादी व्यवस्था और क़र्ज़

मौजूदा व्यवस्था में क़र्ज़ की भूमिका समझने के लिए ज़रूरी है कि हम इस व्यवस्था में उत्पादन के मक़सद को समझें। पूँजीवादी व्यवस्था में मुख्य तौर पर उत्पादन का निर्णय (किस माल का उत्पादन करना है, कितना उत्पादन करना आदि) पूँजीपतियों द्वारा किया जाता है। अंबानी, अदाणी या छोटे-बड़े पूँजीपति उत्पादन जन-कल्याण, रोज़गार देने या समाज की तरक़्क़ी के लिए नहीं करते बल्कि अपना मुनाफ़ा कमाने के लिए करते हैं। इस लुटेरी व्यवस्था में उत्पादन करने का मक़सद ज़्यादा से ज़्यादा मुनाफ़ा कमाना है। यहीं क़र्ज़ की महत्वपूर्ण भूमिका आती है। पूँजीपतियों के लिए क़र्ज़ अपने मुनाफ़े बढ़ाने का ही एक तरीक़ा होता है। ऐसे प्रोजेक्टों में निवेश करने के लिए जहाँ पूँजीपतियों के अपने स्रोत नाकाफ़ी होते हैं, क़र्ज़ ज़रूरी होता है। इससे पूँजीपति तेज़ी से इस तरह के उत्पादन में निवेश बढ़ाते हैं, जिसके ज़रिए उन्हें मुनाफ़ा होता है। इन अर्थों में क़र्ज़ ना सिर्फ़ कुल उत्पादन को ही तेज़ी से बढ़ाने में मददगार साबित होता है, बल्कि इस व्यवस्था में उत्पादन के असल मक़सद, ज़्यादा से ज़्यादा मुनाफ़ा हड़पने में पूँजीपतियों की मदद करता है। क़र्ज़ लेने का मक़सद, इसके ज़रिए भविष्य में होने वाले मुनाफ़े की उम्मीद के साथ जुड़ा हुआ है। क़र्ज़ का भुगतान (ब्याज़ आदि) भी भविष्य में होने वाले मुनाफ़े में से ही करने की उम्मीद की जाती है। परंतु पूँजीवाद के वजूद से जुड़ा नियम मुनाफ़े की दर गिरना है। मुनाफ़े की दर के गिरने के कारण एक हद के बाद कुल मुनाफ़े के भी सिकुड़ने के कारण वह स्रोत (मुनाफ़ा) ही सिकुड़ने लगता है, जिसमें से पूँजीपति ने अपना क़र्ज़ वापस करना है। क़र्ज़ ना वापस कर पाने की स्थिति में मालिक की जायदाद बेचकर क़र्ज़ की पूर्ति की जाती है। पूँजीपतियों को दिए जाने वाले क़र्ज़ को निजी क़र्ज़ कहा जाता है। असल में पूँजीवाद में यह क़र्ज़ ही फ़ैसलाकुन है और बाक़ी क़र्ज़ों की दिशा तय करता है। मुख्यधारा के अर्थशास्त्री आमतौर पर सार्वजनिक क्षेत्र के क़र्ज़ या सरकार द्वारा लिए गए क़र्ज़ पर ज़्यादा ज़ोर देते हैं, परंतु असल में सरकारी क़र्ज़ की मात्रा मुख्य तौर पर पूँजीपतियों के सिर क़र्ज़ के साथ तय होती है। इसका कारण यह है कि इस व्यवस्था में सरकार भी पूँजीपतियों की चाकर होती है और उसकी नीतियाँ भी इनके मुनाफ़ों को ध्यान में रखकर बनाई जाती हैं। जब पूँजीपति ख़ासतौर पर बड़े पूँजीपति अपना क़र्ज़ चुकाने और मुनाफ़ा कमाने के लिए अपना कारोबार चलाने के योग्य नहीं रहते तो ऊपर दिए गए उदाहरण की तरह एकदम उनकी कुर्की नहीं हो जाती।

(अगले पन्ने पर जारी)

(पिछले पन्ने से आगे)

यहाँ इनकी सेवा में सरकार हाजिर होती है। सरकार पर क़र्ज़ नवउदारवादी नीतियों के समय से ही तेज़ी से बढ़ने लगे हैं। कोरोना दौर में लॉकडाउन की नीतियों के कारण जब पूँजीपतियों के मुनाफ़ों में गिरावट आई और उन पर क़र्ज़ का बोझ बढ़ता गया तो दुनिया-भर की सरकारों ने अपने देश के पूँजीपतियों की मदद करने के लिए बड़े वित्तीय घाटे झेलने का फ़ैसला लिया। सरकारों द्वारा पूँजीपतियों को सब्सिडियाँ, राहत पैकेज, क़र्ज़ों को बट्टे खाते डालकर आदि से ये वित्तीय घाटे झेले गए हैं। मोदी सरकार ने अपने 10 साल के कार्यकाल के दौरान 13 लाख करोड़ रुपए के पूँजीपतियों के क़र्ज़े माफ़ किए हैं। कोरोना काल के उदाहरण से साफ़ है कि सरकार के सिर पर क़र्ज़ बढ़ने का मुख्य कारण लोगों को दी जा रही सहुलतें नहीं (कुछ "विशेषज्ञ" सरकारी क़र्ज़ को घटाने का तरीक़ा आम लोगों की बची-खुची सहूलतों पर डाका डालने में देखते हैं) बल्कि पूँजीपतियों को बड़े स्तर पर दी गई सहूलतें हैं।

क़र्ज़ और आम जनता पर इसका असर

पूँजीवादी हुक्मरानों की सेवा के लिए उठाए गए क़र्ज़ को चुकाने के लिए सरकार आम जनता पर बोझ दुगना चौगुना कर देती है। निजी क़र्ज़ों की भाँति सरकार को भी अपना क़र्ज़ वापस करना पड़ता है। और पूँजीपति भी यही चाहते हैं कि सरकार के सिर पर क़र्ज़ कम हो, ताकि उन्हें ज़रूरत पड़ने पर सरकार आसानी से घरेलू और अंतरराष्ट्रीय स्रोतों से निचली दर पर क़र्ज़ हासिल कर सके। क़र्ज़ उतारने के लिए सरकार मुख्य तौर पर दो तरीक़े अपनाती है। अपनी आमदनी से क़र्ज़ वापस करना या नई मुद्रा छापना। पहले तरीक़े में सरकार जो मुख्य ढंग अपनाती है, वे हैं जन सुविधाओं पर कटौती करना और प्रत्यक्ष व परोक्ष टैक्सों की उगाही में बढ़ौतरी करना। पूँजीपतियों के मुनाफ़े बढ़ाने के लिए पानी की तरह बहाए गए अरबों डॉलर सरकार को चुभते नहीं, लेकिन लोगों की बुनियादी सुविधाओं जैसे स्कूल, विश्वविद्यालय, अस्पताल, सार्वजनिक वितरण प्रणाली आदि सार्वजनिक ख़र्च को सरकार क़र्ज़ का कारण बता देती है और इन पर बड़ी कटौतियाँ करती है। अपने चहेते पूँजीपतियों के क़र्ज़ और टैक्स माफ़ करने, उन्हें राहत पैकेज देने वाली सरकार लगातार पहले ही आर्थिक मंदी की हालत के चलते बेरोज़गारी-भुखमरी की सताई आम जनता पर टैक्सों का बोझ हरसंभव हद तक बढ़ाती है। दूसरे तरीक़े में सरकार मुद्रा छापकर अपने क़र्ज़े उतारने की कोशिश करती है, लेकिन मुद्रा की ज़्यादा छपाई किसी तरह की असल दौलत पैदा नहीं करती और आम तौर पर मालों की क़ीमत में बढ़ौतरी होती है। दुनिया-भर के अध्ययन यह दिखाते हैं कि मज़दूर और अन्य मेहनतकश जनता की आमदनी में बढ़ौतरी, मालों की क़ीमत में बढ़ौतरी से पिछड़ जाती है, जिससे उनका जीवन स्तर और ज़्यादा गिर जाता है। इसका मतलब है कि पूँजीपतियों की चाकरी करने के लिए क़र्ज़ का भुगतान करने के लिए सरकार कोई भी तरीक़ा अपनाए, नतीजा कुल दौलत पैदा करने वाले मेहनतकश लोगों की मुसीबतों में बढ़ौतरी ही होता है।

ऐसे समय में जब क़र्ज़ का बोझ आम लोगों को मिलने वाली नाममात्र की सार्वजनिक सेवाओं में कटौती करके मेहनतकश जनता पर थोपा जा रहा है, तब ज़रूरत है कि मज़दूर वर्ग के नेतृत्व में समूची मेहनतकश जनता संगठित होकर इस लुटेरी व्यवस्था को बदलने और एक जन-पक्षधर व्यवस्था की स्थापना के लिए कोशिशें तेज़ करे।

– पुष्पिंदर

मोदी सरकार के सांप्रदायिक-फ़ाशीवादी हमले का मुँहतोड़ जवाब देने के लिए आगे आओ!

(पन्ना 1 से आगे)

बनाम प्रवासी बनाने के लिए अच्छी तरह इस्तेमाल किया है। भाजपा ने असम में अपने पैर जमाने के लिए यह घोषणा की थी कि बाहरी व्यक्तियों को बाहर निकाला जाएगा और इसी के तहत असम में 'राष्ट्रीय नागरिक रजिस्टर' (एन.आर.सी.) को इस्तेमाल किया गया। मुसलमानों को बाहर निकालने के नाम पर तैयार 19 लाख लोगों की इस सूची में 14 लाख नाम हिंदुओं के आ गए, जिनके पास अपनी नागरिकता साबित करने के लिए सरकार द्वारा माँगे गए काग़ज़ पूरे नहीं थे। इसके बाद ऐसे लोगों को नागरिकता देने के लिए 'नागरिकता संशोधन क़ानून' (सी.ए.ए.) लाया गया। जिसके तहत अफ़ग़ानिस्तान, बांगलादेश और पाकिस्तान से आए हिंदुओं, सिक्खों, जैनियों, बौद्धों, पारसियों और ईसाइयों को नागरिकता दी जाएगी। इस तरह सांप्रदायिक एजेंडे के चलते ही नागरिकता धर्म के आधार पर दी जा रही है और इसमें से मुसलमानों को बाहर कर दिया गया है। इसके बाद 'राष्ट्रीय जनसंख्या रजिस्टर' नाम का तीसरा हथियार चलाया गया है।

राष्ट्रीय जनसंख्या रजिस्टर (एन.पी.आर.) भारत में रहने वाले सभी लोगों की सूची है। इसे आगे नागरिकता सूची तैयार करने के लिए इस्तेमाल किया जाएगा। जनसंख्या रजिस्टर में जिन पर शक होगा, उनसे भारत के नागरिक होने का सबूत माँगा जाएगा। इस तरह राष्ट्रीय जनसंख्या रजिस्टर में से करोड़ों लोगों को छाँटकर राष्ट्रीय नागरिकता सूची तैयार की जाएगी और छाँटकर बाहर किए गए लोगों को अपने नागरिक होने के सबूत देने के लिए कुछ समय दिया जाएगा, नहीं तो उन्हें क़ैद किया जा सकता है या देश से बाहर निकाला जा सकता है। जनसंख्या रजिस्टर से बाहर निकाले गए व्यक्तियों में से कुछ को धर्म के आधार पर नागरिकता संशोधन क़ानून के अंतर्गत नागरिकता दी जा सकती है। लेकिन बाहर निकाले गए मुसलमानों को नागरिक होने का कोई हक़ नहीं होगा। इसमें अभी तक यह भी तय नहीं कि नागरिकता के लिए कौन-से दस्तावेज़ को सबूत माना जाएगा। ख़ुद सरकार की तरफ़ से बनाए गए वोटर कार्ड, आधार कार्ड और पासपोर्ट तक को भी मान्यता मिलेगी या नहीं, यह भी तय नहीं है। अमित शाह छाती ठोककर कहता है कि असम के बाद राष्ट्रीय नागरिकता रजिस्टर पूरे देश में लागू किया जाएगा।

इन तीनों के अंतर्गत कौन-से दस्तावेज़ और कौन-से साल को मान्यता दी जाएगी, यह वैसे तो अभी तक पूरी तरह स्पष्ट नहीं है, लेकिन यह स्पष्ट है कि इनके सहारे मोदी हुकूमत क्या करेगी। भारत की जेलों में क़ैदियों की संख्या देखें तो जनसंख्या के प्रतिशत के तौर पर मुसलमानों और दलितों की संख्या काफ़ी ज़्यादा है। मुसलमानों की झूठी पुलिस मुठभेड़ें होती हैं, हज़ारों मुसलमानों को क़त्ल करते हुए बाबरी मस्जिद गिराई गई, गुजरात और मुज़फ़्फ़रनगर में मुसलमानों का नरसंहार किया गया और अहमदाबाद जैसे शहरों में मुसलमानों को अलग इलाक़ों में रहने के लिए मजबूर किया जाता रहा है। 2014 के बाद मस्जिदों पर भगवा झंडे लहराकर, गौ हत्या, घर वापसी, लव जेहाद जैसे मुद्दे खड़े करके मुसलमानों के लिए दहशत का माहौल क़ायम किया गया है। ऐसे माहौल में पूरे देश में अगर नागरिकता रजिस्टर को लागू किया जाएगा तो बड़ी संख्या में मुसलमानों को विदेशी कहकर उनसे नागरिकता छीन ली जाएगी। उनसे सबूत माँगे जाएँगे और किसी तरफ़ सुनवाई भी नहीं होगी। यह क़ानून तो सिर्फ़ बहाना है, असल में मोदी हुकूमत तो ठोक-बजाकर कहना चाहती है कि यह देश अब हिंदू राष्ट्र है और यहाँ सिर्फ़ हिंदुओं को रहने का हक़ है। इसलिए यह क़ानून मुसलिम आबादी के लिए बहुत बड़ा ख़तरा है। लेकिन इसके बाद अन्य धार्मिक अल्पसंख्यकों, दलितों और अन्य ग़ैर-सवर्ण जातियों और आदिवासियों का भी नंबर आएगा।

इस क़ानून को देश में लागू किए जाने के और भी पहलू हैं। अकेले असम में यह सूची तैयार करने के लिए 1800 करोड़ का ख़र्चा हुआ है। नौकरशाही ने भी लोगों को सूची में से बाहर हो जाने का डर दिखाकर करोड़ों रुपए हड़प लिए हैं। दशकों से असम में रह रहे, सरकारी नौकरी कर चुके अनेकों लोग नागरिकता सूची में से बाहर कर दिए गए। इनमें भी बड़ी बहुसंख्या हिंदुओं की थी। इसलिए पूरे देश में नागरिकता सूची लागू करने में ना सिर्फ़ अरबों रुपए बरबाद होंगे, बल्कि आम जनता को बड़े स्तर पर नोटबंदी और लॉकडाउन से भी भयानक परेशानियाँ झेलनी पड़ेंगी। नौकरशाही-अफ़सरशाही दस्तावेज़ों के लिए मोटी रक़में वसूल करेगी, क्योंकि जनसंख्या का एक बड़ा हिस्सा अनपढ़ है, उनके पास अनेकों दस्तावेज़ नहीं हैं, सही जानकारियाँ नहीं हैं, करोड़ों लोगों के सिर पर तो छत भी नहीं है... ऐसे लोग अपनी नागरिकता कैसे साबित करेंगे? और इनमें सभी धर्मों के लोग शामिल होंगे। नागरिकता की सूची में से बाहर होने वाले आप भी हो सकते हैं, जो सत्ता विरोधी हो, सरकार की ग़लत नीतियों के ख़िलाफ़ या अपने अधिकारों के लिए सड़कों पर उतरते हो, संगठन बनाते हो और क्रांतिकारी साहित्य पढ़ते हो। इस तरह इसे सत्ता विरोधी लोगों के ख़िलाफ़ इस्तेमाल किया जाने वाला हथियार भी बनाया जाएगा।

नागरिकता से बाहर किए गए लोगों को हिटलर के नज़रबंदी कैंपों जैसे कैंपों में क़ैद किया जाएगा। उदाहरण के तौर पर असम में हज़ारों लोग नागरिकता शक के घेरे में होने के कारण क़ैद कर दिए गए। 10 जुलाई 2019 को राज्यसभा में गृह राज्यमंत्री नित्यानंद राय ने कहा था कि नागरिकता की पुष्टि होने तक देश में आए नाजायज़ लोगों को देश से निकाला नहीं जाएगा, बल्कि उन्हें नज़रबंदी कैंपों में रखा जाएगा। 9 जनवरी 2019 को केंद्र सरकार ने सभी राज्य सरकारों को एक चिट्ठी भेजी थी जिसमें नज़रबंदी कैंपों की बनावट, उनके अंदर की सहूलतें आदि के बारे में निर्देश दिए गए थे।

इसलिए यह पूरी तरह स्पष्ट है कि 'नागरिकता संशोधन क़ानून' का संबंध 'राष्ट्रीय नागरिक रजिस्टर' और 'राष्ट्रीय जनसंख्या रजिस्टर' से है और यह मुसलमानों समेत देश के अन्य धर्मों के लोगों से, ख़ासकर ग़रीबों से, नागरिकता छीनने का क़ानून है। इसलिए नागरिकता अधिकारों पर हमलों के ख़िलाफ़ सख़्त से सख़्त आंदोलन लड़ना होगा। पिछली बार देश-स्तर पर हुए ऐतिहासिक जन आंदोलन ने मोदी सरकार की रातों की नींद उड़ा दी थी, इस बार उससे भी बड़े स्तर पर आंदोलन के लिए जनता को सड़कों पर उतरना होगा।

अंतरराष्ट्रीय मज़दूर स्त्री दिवस पर विभिन्न कार्यक्रमों का आयोजन

बीती 8 मार्च को अंतरराष्ट्रीय मज़दूर स्त्री दिवस था। यह दिन हक़, आज़ादी, बराबरी के लिए, लूट-दमन-अन्याय के विरुद्ध स्त्री मज़दूरों के लगातार जारी संघर्षों का प्रतीक दिन है। इस दिन के संबंध में विभिन्न मज़दूर-नौजवान-छात्र संगठनों ने अलग-अलग जगहों पर कार्यक्रम आयोजित किए।

कारख़ाना मज़दूर यूनियन, पंजाब द्वारा लुधियाणा की राजीव गाँधी कालोनी में 10 मार्च को झंडा मार्च किया गया। यूनियन की सचिव कल्पना ने लोगों को संबोधित करते हुए मज़दूर महिलाओं की विशेष माँगों – बराबर काम का बराबर वेतन, काम की जगहों पर सुरक्षा की गारंटी आदि पर बात की। उन्होंने कहा कि आज महिलाओं को दूसरे दर्जे की नागरिक समझने वाले समाज में मेहनतकश महिलाओं को अपने हक़-अधिकारों को जानना-समझना होगा और समाज को बदलने के लिए आगे आना होगा। आज महिलाओं के जागरुक हुए बिना, उनके संघर्षों में हिस्सा लिए बिना कोई भी सामाजिक बदलाव पूरा नही होगा। साथी रमेश ने गीत पेश किए।

टेक्सटाइल-हौज़री कामगार यूनियन, पंजाब द्वारा मज़दूर पुस्तकालय, ई.डब्ल्यू.एस. कालोनी पर 10 मार्च को विचार-चर्चा का आयोजन किया गया। नई स्वेर पाठशाला की ओर से बलजीत कौर ने मुख्य वक्ता के तौर पर बात रखी। उन्होंने कहा कि कोई भी सामाजिक बदलाव महिलाओं की भागीदारी के बिना नहीं आ सकता। महिलाएँ कुल आबादी का आधा हिस्सा हैं, लेकिन अभी

भी वे समाज में दोयम दर्जे के नागरिक के तौर पर जी रहीं हैं। आज ज़रूरी है कि महिलाएँ अपने महान इतिहास के बारे में जानें और इस अन्यायपूर्ण समाज को बदलने के लिए आगे आएँ। उन्होंने कहा कि मज़दूर महिलाओं को मर्दों के बराबर मज़दूर संगठनों में सक्रिय होना चाहिए और अपने हक़-अधिकारों के बारे में जागरूक होना चाहिए। विचार-चर्चा में नौजवान भारत सभा की ओर से क्रांतिकारी गीत पेश किए गए।

नौजवान भारत सभा और कारख़ाना मज़दूर यूनियन की तरफ़ से हल्लोमजरा में स्थित सावित्रीबाई फुले पुस्तकालय में 10 मार्च को 'बवंडर' फ़िल्म दिखाई गई, जो राजस्थान की एक सच्ची घटना पर आधारित है। फ़िल्म के बाद मज़दूर महिलाओं और नौजवान लड़कियों ने आज के समय में औरतों की स्थिति पर विचार-चर्चा की। उन्होंने अपने अनुभव बताते हुए कहा कि एक तरफ़ काम का दोहरा बोझ सहने को मजबूर है और दूसरी तरफ़ फ़ैक्टरी और घरों में काम करते हुए उन्हें कई गंदी नज़रों का सामना करना पड़ता है। मैनेजमेंट द्वारा भी औरतों के लिए कोई सुरक्षा व्यवस्था नहीं की जाती। साथ ही काम से ना निकाला जाए, इसलिए कई भद्दे मज़ाक़ का भी सामना भी करना पड़ता है। हल्लोमाजरा में संगठन के महत्व को समझते हुए उन्होंने कहा कि पहले यहाँ कई हादसे होते थे, लेकिन लोग चुप रहते थे। अब संगठन के होने से औरतें भी निडर होकर बोल पा रही हैं। छेड़खानियाँ और कमेंटबाजी भी पहले से काफ़ी कम हुई है। उन्होंने इस बात पर भी ज़ोर दिया कि एक अच्छा समाज तभी बन पाएगा, जब पुरुष और महिलाएँ क़दम से क़दम मिलाकर चलेंगे और एक शोषण-मुक्त समाज बनाएँगे।

पंजाब स्टूडेंट्स यूनियन (ललकार) द्वारा 'मौजूदा समय में नारी मुक्ति का प्रश्न' विषय पर 8 मार्च को पंजाबी यूनिवर्सिटी, पटियाला में विचार-चर्चा करवाई गई। मुख्य वक्ता के तौर पर पंजाबी मार्क्सवादी पत्रिका 'प्रतिबद्ध' के संपादक सुखविंदर ने बात रखी। उन्होंने कहा कि स्त्री ग़ुलामी का मुख्य कारण निजी संपत्ति है, जिसका ख़ात्मा ही औरतों को आज़ाद कर सकता है। उन्होंने कहा कि घरेलू कामों के समाजीकरण की ज़रूरत है ताकि स्त्रियाँ इस बोझ से छुटकारा हासिल कर सकें। उन्होंने कहा कि इसके लिए पूँजीवादी उत्पादन संबंधों का ख़ात्मा ज़रूरी है।

पंजाब स्टूडेंट्स यूनियन (ललकार) द्वारा 8 मार्च को पंजाब यूनिवर्सिटी, चंडीगढ़ में नकुल साहनी द्वारा निर्देशित 'इज़्ज़त नगर की असभ्य बेटियाँ' दस्तावेज़ी फ़िल्म की पेशकारी की गई। यह फ़िल्म दिखाती है कि औरतों पर समाज और परिवार द्वारा लगाई गई पाबंदियाँ कैसे उनके सपनों, उम्मीदों और इच्छाओं को दबाती हैं, उन्हें ग़ुलामी में रहने के लिए मज़बूर करती हैं। इस फ़िल्म में खाप पंचायतों द्वारा "इज़्ज़त" के लिए क़त्ल की सच्ची घटनाएँ दिखाई गई हैं। अनेकों औरतों द्वारा रूढ़िवादी बेड़ियों को तोड़कर आज़ादी से अपनी ज़िंदगी की राह चुनने के संघर्ष भी दिखाए गए हैं। फ़िल्म देखने के बाद छात्रों ने फ़िल्म के अनेकों पहलुओं पर समग्र बातचीत की।

अमृतसर में पंजाब स्टूडेंट्स यूनियन (ललकार) द्वारा 6 और 7 मार्च को गुरु नानक देव यूनिवर्सिटी में पोस्टर और पुस्तक प्रदर्शनी लगाई गई। 7 मार्च को 'पितृसत्ता और औरतों की आज़ादी-समानता का प्रश्न' विषय पर विचार-चर्चा का आयोजन किया गया। रविंदर ने मुख्य वक्ता के तौर पर बात रखी। उन्होंने मौजूदा पूँजीवादी व्यवस्था में औरतों की पितृसत्ता के पैदा होने, दोहरी ग़ुलामी, औरतों के वस्तुकरण और उन पर हो रहे तरह-तरह के जुल्मों पर बात की। उन्होंने कहा कि निजी संपत्ति के ख़ात्मे से ही स्त्री प्रश्न का हल हो सकता है।

धारा 295-ए के ख़िलाफ़ रोष कन्वेंशन और प्रदर्शन

बीती 27 फ़रवरी को जलंधर के देशभगत यादगार हाल में पंजाब के 45 संगठनों के मंच 'धारा 295-ए और अन्य काले क़ानूनों विरोधी कमेटी' के आह्वान पर रोष कन्वेंशन और प्रदर्शन किया गया। वक्ताओं ने कहा कि पंजाब सरकार और पुलिस की यह सारी कार्रवाई पूरी तरह ग़ैरजनवादी है, विचार ज़ाहिर करने की आज़ादी पर हमला है, जनवादपसंद नेताओं, कार्यकर्ताओं, लेखकों, बुद्धिजीवियों, पत्रकारों और अन्य आम नागरिकों की जनवादी अधिकार की आवाज़ दबाने वाली, सांप्रदायिक ताक़तों की पीठ थपथपाने वाली है। समाज में वैज्ञानिक, जनवादी और सांप्रदायिकतावाद विरोधी विचारों का प्रचार करना हरेक नागरिक का फ़र्ज़ है और संवैधानिक अधिकार भी है। हिंदुत्वी फ़ाशीवादी ताक़तों द्वारा अपने घटिया सांप्रदायिक फ़ाशीवादी राजनीतिक मंसूबों के तहत धारा 295 और 295-ए का

इस्तेमाल करके समाज को जागरुक करने वाले लोगों के ख़िलाफ़ झूठे केस दर्ज करवाए जा रहे हैं। ये ताक़तें अयोध्या में राम मंदिर के बहाने योजनाबद्ध साज़िश के तहत देश समेत पंजाब में लगातार सांप्रदायिकतावादी नफ़रत का माहौल पैदा करने की कोशिश कर रही हैं, जिसे बिल्कुल भी बर्दाश्त नहीं किया जा सकता। उन्होंने सभी इंसाफ़पसंद और जनवादपसंद लोगों को सांप्रदायिकतावादी ताक़तों की जनविरोधी साज़िशों का मुँहतोड़ जवाब देने के लिए आगे आने का आह्वान किया है।

सम्मेलन में जनवादी अधिकार सभा पंजाब, तर्कशील सोसाइटी पंजाब, देशभक्त यादगार कमेटी जलंधर, पंजाब लोक सभ्यचारक मंच, प्रोग्रेसिव कल्चरल एसोसिएशन केलगेरी कनाडा, डेमोक्रेटिक लॉयर्स एसोसिएशन पंजाब, अदारा लोहमणी, बी.के.यू. एकता (उगराहाँ), बी.के.यू. डकौंदा (धनेर), कारख़ाना मज़दूर यूनियन, टैक्सटाइल-हौज़री कामगार यूनियन, नौजवान भारत सभा पंजाब, पंजाब स्टूडेंट्स यूनियन, पी.एस.यू. ललकार, नौजवान भारत सभा (ललकार), पंजाब, पंजाब एंड चंडीगढ़ जर्नलिस्ट यूनियन, पंजाब किसान यूनियन, बी.के.यू. डकौंदा (बुर्ज गिल्ल), क्रांतिकारी किसान यूनियन पंजाब, बी.के.यू. (क्रांतिकारी), पंजाब खेत मज़दूर यूनियन, एटक, पेंडू मज़दूर यूनियन, क्रांतिकारी सभ्याचारक केंद्र, पेंडू मज़दूर यूनियन (मशाल), इंक़लाबी मज़दूर केंद्र, वर्ग चेतना मंच, मोल्डर एंड स्टील वर्कर्स यूनियन, किरती किसान यूनियन, एफ़.सी.आई. एंड फ़ूड एजेंसी पल्लेदार यूनियन (आज़ाद), क्रांतिकारी मज़दूर सेंटर, क्रांतिकारी पेंडू मज़दूर यूनियन, पंजाब स्टूडेंट्स यूनियन (शहीद रंधावा), डेमोक्रेटिक टीचर्स फ्रंट (डीटीएफ़), केंद्रीय पंजाबी लेखक सभा, आर.सी.एफ़. एम्पलाइज़ यूनियन (रेल कोच फ़ैक्टरी कपूरथला), दलित और मज़दूर मुक्ति मोर्चा पंजाब, देहाती मज़दूर सभा, पंजाब सबौर्डिनेट फ़ेडरेशन रजिस्टर्ड 1406/22बी चंडीगढ़, जम्हूरी किसान सभा, डेमोक्रेटिक टीचर्स फ़ेडरेशन पंजाब, नौजवान भारत सभा, डेमोक्रेटिक मुलाज़िम फ्रंट, मेडिकल प्रैक्टिशनर्स एसोसिएशन पंजाब, प्रगतिशील लेखक संघ, केंद्रीय पंजाबी लेखक सभा (सेखों) रजिस्टर्ड, पंजाबी साहित्य अकादमी लुधियाना संगठन और अलग-अलग मंच शामिल हुए।

पूँजीपति वर्ग सर्वोपरि अपनी क़ब्र खोदने वालों को पैदा करता है!

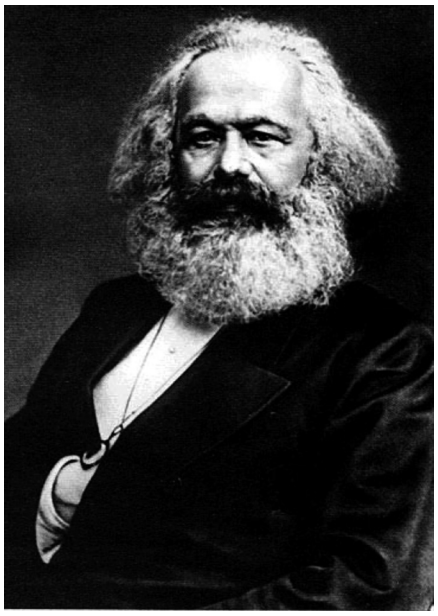

(विश्व मज़दूर वर्ग के महान शिक्षक और नेताओं – कार्ल मार्क्स और फ़्रेडरिक एंगेल्स द्वारा मज़दूरों के अंतरराष्ट्रीय संगठन कम्युनिस्ट लीग के लिए साल 1848 में "कम्युनिस्ट पार्टी का घोषणापत्र" लिखा गया था। यहाँ हम कार्ल मार्क्स की 141वीं बरसी (14 मार्च 2024) के अवसर पर इस ऐतिहासिक दस्तावेज़ के अंश पेश कर रहे हैं। – संपादक)

जिन हथियारों से पूँजीपति वर्ग ने सामंतवाद को मार गिराया था, वे ही अब पूँजीपति वर्ग के ख़िलाफ़ मोड़ दिए जाते हैं।

किंतु पूँजीपति वर्ग ने ऐसे हथियारों को ही नहीं गढ़ा है जो उसका अंत कर देंगे, बल्कि उसने ऐसे लोगों को भी पैदा किया है जो इन हथियारों का इस्तेमाल करेंगे – आधुनिक मज़दूर वर्ग – सर्वहारा वर्ग।

जिस अनुपात में पूँजीपति वर्ग का, यानी पूँजी का विकास होता है, उसी अनुपात में सर्वहारा वर्ग का, आधुनिक मज़दूर वर्ग का, उन श्रमजीवियों के वर्ग का विकास होता है, जो तभी तक ज़िंदा रह सके हैं जब तक उन्हें काम मिलता जाए, और उन्हें काम तभी तक मिलता है, जब तक उनका श्रम पूँजी में वृद्धि करता है। ये श्रमजीवी, जो अपने को अलग-अलग बेचने के लिए लाचार हैं, अन्य व्यापारिक माल की तरह ख़ुद भी माल हैं, और इसलिए वे होड़ के उतार-चढ़ाव तथा बाज़ार की हर तेज़ी-मंदी के शिकार होते हैं।

मशीनों के विस्तृत इस्तेमाल और श्रम विभाजन के कारण मज़दूरों के काम का वैयक्तिक चरित्र नष्ट हो गया है और इसलिए यह काम उनके लिए आकर्षक नहीं रह गया है। मज़दूर मशीन का पुछल्ला बन जाता है और उससे सबसे सरल, नीरस और आसानी से प्राप्त योग्यता की माँग की जाती है। इसलिए मज़दूर के उत्पादन पर ख़र्च लगभग पूर्णतः उसके जीवन निर्वाह और वंश वृद्धि के लिए आवश्यक साधनों तक सीमित रह गया है। लेकिन हर माल का, और इसलिए श्रम का भी दाम उसके उत्पादन में लगे हुए ख़र्च के बराबर होता है। अतः जिस अनुपात में काम की अरुचिकरता में वृद्धि होती है उसी अनुपात में मज़दूरी घटती है। यही नहीं, जिस मात्र में मशीनों का इस्तेमाल और श्रम विभाजन बढ़ता है उसी मात्र में श्रम का बोझ भी बढ़ता जाता है, चाहे यह काम के घंटे बढ़ाने के ज़रिए हो या निर्धारित समय में मज़दूरों से अधिक काम लेने या मशीन की रफ़्तार बढ़ाने आदि के ज़रिए।

आधुनिक उद्योग ने पितृसत्तात्मक उस्ताद-कारीगर के छोटे-से वर्कशाप को औद्योगिक पूँजीपति के विशाल कारख़ाने में बदल दिया है। कारख़ाने में भरे झुंड के झुंड श्रमजीवी सैनिकों की तरह संगठित किए जाते हैं। औद्योगिक फ़ौज के सिपाहियों की तरह वे बाक़ायदा एक दरज़ावार तरतीब में बँटे हुए अफ़सरों और सार्जेंटों की कमान में रखे जाते हैं। वे केवल पूँजीपति वर्ग और पूँजीवादी राज्य के ही ग़ुलाम नहीं हैं; बल्कि हर दिन, हर घंटे वे मशीन के, ओवरसियर के और सर्वोपरि ख़ुद पूँजीपति कारख़ानेदार के ग़ुलाम होते हैं। यह तानाशाही जितनी ही अधिक खुलकर यह घोषित करती है कि मुनाफ़ा ही उसका लक्ष्य और उद्देश्य है, उतनी ही अधिक वह तुच्छ, घृणित और कटु होती है।

शारीरिक श्रम में जितनी ही प्रवीणता और मशक़्क़त की ज़रूरत कम होती जाती है यानी जितनी ही आधुनिक उद्योग में प्रगति होती जाती है, उतना ही अधिक पुरुषों का स्थान स्त्रियाँ लेती जाती हैं। जहाँ तक मज़दूर वर्ग का प्रश्न है, उम्र और लिंगभेद का कोई विशिष्ट सामाजिक महत्त्व नहीं रह गया है। सभी श्रम के औज़ार हैं – उम्र और लिंगभेद के अनुसार किसी पर कम ख़र्च बैठता है, तो किसी पर ज़्यादा।

कारख़ानेदार द्वारा मज़दूर के शोषण का फ़िलहाल अंत हुआ नहीं, और उसे नक़द मज़दूरी मिली नहीं कि फ़ौरन पूँजीपति वर्ग के अन्य भाग – मकान-मालिक, दूकानदार, गिरवी रखने वाला महाजन, आदि – उस पर टूट पड़ते हैं।

मध्यम वर्ग के निम्न स्तर – छोटे कारोबारी, दूकानदार, आमतौर पर किरायाजीवी, दस्तकार और किसान – ये सब धीरे-धीरे मज़दूर वर्ग की स्थिति में पहुँच जाते हैं। कुछ तो इसलिए कि जिस पैमाने पर आधुनिक उद्योग चलता है उसके लिए उनकी छोटी पूँजी पूरी नहीं पड़ती और बड़े पूँजीपतियों के साथ मुक़ाबले में वह डूब जाती है; और कुछ इसलिए कि उत्पादन के नए-नए तरीक़ों के निकल आने के कारण उनके विशिष्टीकृत कौशल का कोई मूल्य नहीं रह जाता है। इस प्रकार आबादी के सभी वर्गों से मज़दूर वर्ग की भर्ती होती है।

मज़दूर वर्ग विकास की विभिन्न मंज़िलों से गुज़रता है। जन्म काल से ही पूँजीपति वर्ग से उसका संघर्ष शुरू हो जाता है।

शुरू में अकेले-दुकेले मज़दूर लड़ते हैं, फिर एक कारख़ाने के मज़दूर मिलकर लड़ते हैं, तब फिर एक उद्योग के एक इलाक़े के सब मज़दूर एक साथ उस पूँजीपति से मोर्चा लेते हैं, जो उनका सीधे-सीधे शोषण करता है। उनका हमला उत्पादन की पूँजीवादी अवस्थाओं पर नहीं होता, बल्कि ख़ुद उत्पादन के औज़ारों पर होता है। वे अपनी मेहनत के साथ होड़ करने वाले बाहर से मँगाए गए सामानों को नष्ट कर देते हैं, मशीनों को चूर कर देते हैं, फ़ैक्टरियों में आग लगा देते हैं और मध्ययुग के कारीगर की खोई हुई हैसियत को फिर से क़ायम करने की बलपूर्वक कोशिश करते हैं।

...

लेकिन उद्योग के विकास के साथ-साथ मज़दूर वर्ग की संख्या में ही वृद्धि नहीं होती, बल्कि वह बड़ी-बड़ी जमातों में संकेंद्रित हो जाता है, उसकी ताक़त बढ़ जाती है और उसे अपनी इस ताक़त का अधिकाधिक अहसास होने लगता है। मशीनें जिस अनुपात में श्रम के तमाम भेदों को मिटाती जाती हैं और लगभग सभी जगह मज़दूरी को एक ही निम्न स्तर पर लाती जाती हैं, उसी अनुपात में मज़दूर वर्ग की पाँतों में नाना प्रकार के हित और जीवन की अवस्थाएँ अधिकाधिक एकसमान होती जाती हैं। पूँजीपति वर्ग की बढ़ती हुई आपसी होड़ और उससे पैदा होने वाले व्यापारिक संकटों के कारण मज़दूरी और भी अस्थिर हो जाती है। मशीनों में लगातार सुधार, जो निरंतर तेज़ी के साथ बढ़ता जाता है, मज़दूरों की जीविका को अधिकाधिक अनिश्चित बना देता है। अलग-अलग मज़दूरों और अलग-अलग पूँजीपतियों की टक्करें अधिकाधिक रूप से दो वर्गों के बीच की टक्करों की शक्ल अख़्तियार करती जाती हैं। और तब पूँजीपति वर्ग के विरुद्ध मज़दूर अपने संगठन (ट्रेड यूनियनें) बनाने लगते हैं, मज़दूरी की दर को क़ायम रखने के लिए वे संघबद्ध होते हैं_ समय-समय पर होने वाली इन टक्करों के लिए पहले से तैयार रहने के निमित्त वे स्थायी संघों की स्थापना करते हैं। जहाँ-तहाँ उनकी लड़ाई बलवों का रूप धारण कर लेती है।

जब-तब मज़दूरों की जीत भी होती है लेकिन केवल वक़्ती तौर पर। उनकी लड़ाइयों का असली फल तात्कालिक नतीजों में नहीं, बल्कि मज़दूरों की निरंतर बढ़ती हुई एकता में है। आधुनिक उद्योग द्वारा उत्पन्न किए गए संचार साधनों से, जो अलग-अलग जगहों के मज़दूरों को एक-दूसरे के संपर्क में ला देते हैं, एकता के इस काम में मदद मिलती है। एक ही प्रकार के अनगिनत स्थानीय संघर्षों को केंद्रीकृत करके उन्हें एक राष्ट्रीय वर्ग संघर्ष का रूप देने के लिए बस इसी प्रकार के संपर्क की ज़रूरत होती है। लेकिन प्रत्येक वर्ग संघर्ष एक राजनीतिक संघर्ष होता है। और उस एकता को, जिसे हासिल करने के लिए पुराने ज़माने में यातायात की घोर असुविधाओं के कारण मध्ययुग के बर्गरों को सदियाँ लगी थीं, रेलों की कृपा से आधुनिक सर्वहारा कुछ ही वर्षों में हासिल कर लेते हैं।

सर्वहाराओं का एक वर्ग के रूप में संगठन और फलतः एक राजनीतिक पार्टी के रूप में उनका संगठन उनकी आपसी होड़ के कारण बराबर गड़बड़ी में पड़ जाता है। लेकिन हर बार वह फिर उठ खड़ा होता है – पहले से भी अधिक मज़बूत, दृढ़ और शक्तिशाली बनकर। ख़ुद पूँजीपति वर्ग की भीतरी फूटों का फ़ायदा उठाकर वह मज़दूरों के अलग-अलग हितों को क़ानूनी तौर पर भी मनवा लेता है। इंग्लैंड में दस घंटे के काम के दिन का क़ानून इसी तरह पास हुआ था।

...

अंत में, वर्ग संघर्ष जब निर्णायक घड़ी के नज़दीक पहुँच जाता है तब शासक वर्ग में, वास्तव में संपूर्ण पुराने समाज के अंदर, हो रही विघटन की प्रक्रिया इतना प्रचंड और प्रत्यक्ष रूप धारण कर लेती है कि शासक वर्ग का एक छोटा-सा हिस्सा उससे अलग होकर क्रांतिकारी वर्ग के साथ – उस वर्ग के साथ जिसके हाथ में भविष्य होता है – आ मिलता है। इसलिए, जिस तरह पहले के युग में सामंतों का एक भाग टूटकर पूँजीपति वर्ग से आ मिला था, उसी तरह अब पूँजीपति वर्ग का एक हिस्सा और ख़ासतौर से पूँजीवादी विचारकों का एक हिस्सा जिसने इतिहास की समग्र गति को सैद्धांतिक रूप में समझने के योग्य स्तर पर ख़ुद को पहुँचा दिया है, मज़दूर वर्ग से आकर मिल जाता है।

पूँजीपति वर्ग के मुक़ाबले में आज जितने भी वर्ग खड़े हैं, उन सबमें मज़दूर वर्ग ही वास्तव में क्रांतिकारी वर्ग है। दूसरे वर्ग

(अगले पन्ने पर जारी)

(पिछले पन्ने से आगे)

आधुनिक उद्योग के समक्ष ह्रासोन्मुख होकर अंततः विलुप्त हो जाते हैं; मज़दूर वर्ग ही उसकी मौलिक और विशिष्ट उपज है।

निम्न मध्यम वर्ग के लोग – छोटे कारख़ानेदार, दूकानदार, दस्तकार और किसान – ये सब मध्यम वर्ग के अंश के रूप में अपने अस्तित्व को नष्ट होने से बचाने के लिए पूँजीपति वर्ग से लोहा लेते हैं। इसलिए वे क्रांतिकारी नहीं, रूढ़िवादी हैं। इतना ही नहीं, चूँकि वे इतिहास के चक्र को पीछे की ओर घुमाने की कोशिश करते हैं, इसलिए वे प्रतिगामी हैं। अगर कहीं वे क्रांतिकारी हैं तो सिर्फ़ इसलिए कि उन्हें बहुत जल्द मज़दूर वर्ग में मिल जाना है; चुनाँचे वे अपने वर्तमान नहीं, बल्कि भविष्य के हितों की रक्षा करते हैं; अपने दृष्टिकोण को त्यागकर वे मज़दूर वर्ग का दृष्टिकोण अपना लेते हैं।

...

आज तक जिन-जिन वर्गों का पलड़ा भारी हुआ है, उन सबने अपने पहले से हासिल दरज़े को मज़बूत बनाने के लिए समाज को अपनी हस्तगतकरण प्रणाली के अधीन करने की कोशिश की है। मज़दूर वर्ग अपनी अब तक की हस्तगतकरण प्रणाली का और उसके साथ-साथ पहले की प्रत्येक हस्तगतकरण प्रणाली का अंत किए बिना समाज की उत्पादक शक्तियों का स्वामी नहीं बन सकता। मज़दूर वर्ग के पास बचाने और सुरक्षित रखने के लिए अपना कुछ भी नहीं है; उसका लक्ष्य निजी स्वामित्व की पुरानी सभी गारंटियों और ज़मानतों को नष्ट कर देना है।

पहले के तमाम ऐतिहासिक आंदोलन अल्पमत के आंदोलन रहे हैं या अल्पमत के फ़ायदे के लिए रहे हैं। किंतु मज़दूर आंदोलन विशाल बहुमत का, विशाल बहुमत के फ़ायदे के लिए होने वाला चेतन तथा स्वतंत्र आंदोलन है। हमारे वर्तमान समाज का सबसे निचला स्तर, मज़दूर वर्ग, शासकीय समाज की तमाम ऊपरी परतों को पलटे बिना हिल तक नहीं सकता, किसी प्रकार अपने को ऊपर नहीं उठा सकता।

...

पूँजीपति वर्ग शासन करने के अयोग्य है, क्योंकि वह अपने ग़ुलाम को ग़ुलामी की हालत में ज़िंदा रहने की गारंटी देने में असमर्थ है, क्योंकि वह उसके जीवन स्तर में ऐसी गिरावट नहीं रोक सकता जिसके फलस्वरूप वह उसकी कमाई खाने के बजाय उसका पेट भरने को मजबूर हो जाता है। समाज अब पूँजीपति वर्ग के मातहत नहीं रह सकता – दूसरे शब्दों में, पूँजीपति वर्ग का अस्तित्व अब समाज से मेल नहीं खाता।

पूँजीपति वर्ग के अस्तित्व और प्रभुत्व की लाज़िमी शर्त पूँजी का निर्माण और वृद्धि है; और पूँजी की शर्त है उज़रती श्रम। उज़रती श्रम पूरी तरह मज़दूरों की आपसी होड़ पर निर्भर करता है। उद्योग की उन्नति, जिसे पूँजीपति वर्ग अनिवार्यतः अग्रसर करता है, होड़ के कारण उत्पन्न मज़दूरों के अलगाव की जगह पर उनका संसर्गजनित क्रांतिकारी एका क़ायम कर देती है। इस तरह आधुनिक उद्योग का विकास पूँजीपति वर्ग के पैरों के नीचे से उस ज़मीन को ही खिसका देता है जिसके आधार पर वह उत्पादन करता है और पैदावार को हड़प लेता है। अतः पूँजीपति वर्ग सर्वोपरि अपनी क़ब्र खोदने वालों को पैदा करता है। उसका पतन और मज़दूर वर्ग की विजय दोनों समान रूप से अनिवार्य हैं।

एरिक हेनींग्सेन का चित्र 'एक घायल मज़दूर'

मिलों-कारख़ानों-खदानों में श्रमिकों का दुर्घटनाग्रस्त हो जाना कोई नई बात नहीं है। मानव सभ्यता के विकास की निरंतरता के बीच, रह-रहकर अनेक जोखिम भरे कामों को करते हुए जाने कितने ही अनाम श्रमिकों ने अपने प्राणों की आहुति दी है, लेकिन उनकी ऐसी बलिदान कथाओं के बारे में सोचने, विचार करने और उनके बारे में कुछ करने के उदाहरण कम नज़र आते हैं। भारत में 1975 में घटित चासनाला कोयला खदान दुर्घटना में 375 खदान मज़दूरों की मृत्यु हो गई थी, लेकिन आज हम इस दुर्घटना को भूल गए हैं। आज भी हमारे मिलों-कारख़ानों में ज़रूरी सुरक्षा बंदोबस्त के अभाव में आए दिन दुर्घटनाएँ होती रहती हैं। अभी कुछ दिनों पहले उत्तराखंड में एक निर्माणाधीन सुरंग में घटी दुर्घटना के कारण वहाँ फँसे 41 मज़दूर काफ़ी दिनों तक ख़बरों की सुर्खियों में बने रहे। जैसी कि हमारी परंपरा रही है, बहुत जल्द हम इस दुर्घटना को भी भूल जाएँगे। विश्व कला और साहित्य के इतिहास में हमें ऐसी दुर्घटनाओं पर आधारित अनेक उत्कृष्ट कृतियाँ मिलती हैं, जो हमें बार-बार ऐसी दुर्घटनाओं, श्रमिकों के शोषण और उनके प्रति हमारी उदासीनता को व्यक्त करने की कोशिश करती हैं। भारतीय भाषाओं में, खदान दुर्घटना पर आधारित और उत्पल दत्त द्वारा प्रस्तुत बांगला नाटक 'अंगार' (1959) निस्संदेह एक ऐसी ही विरल कृति है। ऐसी विभिन्न दुर्घटनाओं पर भारतीय भाषाओं में कई फ़िल्में भी बनी हैं। आधुनिक भारतीय चित्रकला में कुछ जनपक्षधर चित्रकारों ने ऐसे विषयों पर चित्र अवश्य बनाए हैं, लेकिन उन चित्रों की ओर कला इतिहासकारों और समीक्षकों का कभी ध्यान नहीं गया।

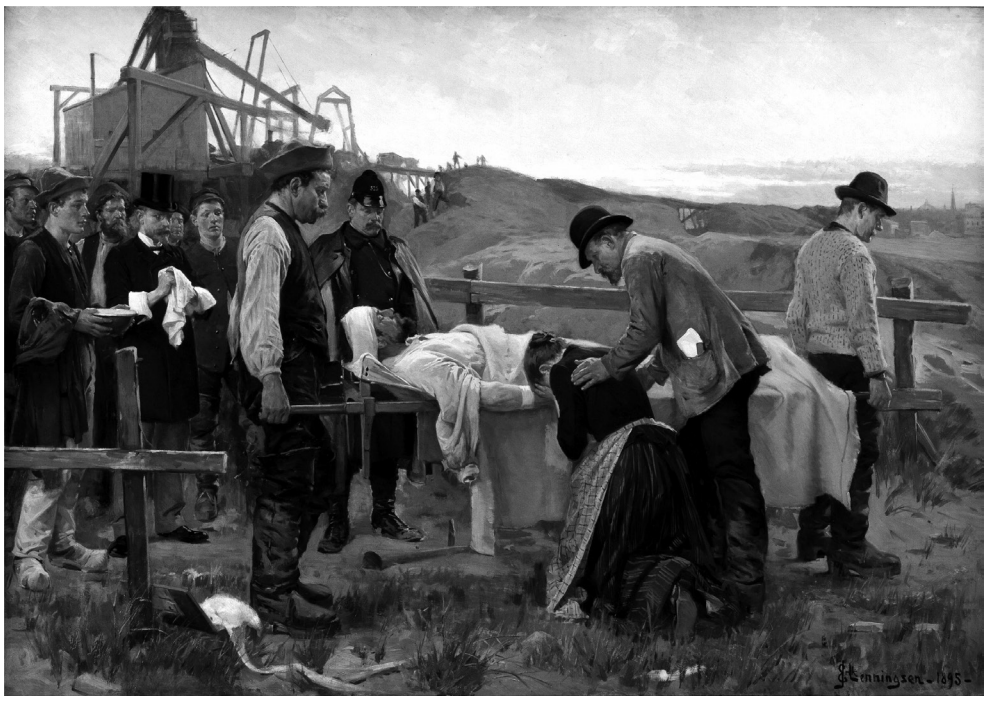

पाश्चात्य चित्रकला में युगों से आम-जन के दैनंदिन क्रियाकलापों पर चित्रों की एक सुदीर्घ परंपरा रही है। आधुनिक काल में, इसी परंपरा को आगे बढ़ाते हुए, चित्रों में 'सामाजिक यथार्थ' को केंद्र में रखकर तमाम उल्लेखनीय चित्र बने। चित्रकला के इतिहास की इस धारा का अपना एक विशेष महत्त्व है। 'सामाजिक यथार्थ' के चित्र हालाँकि किसी घटना विशेष पर बनाए जाते रहे हैं, इसलिए समीक्षकों ने इन्हें प्रायः कथा चित्रण (इलस्ट्रेशन) की श्रेणी में रखकर उन्हें कमतर आँकने की कोशिश की है। यहाँ ग़ौरतलब है कि ऐसे चित्रों के संदर्भों को जाने बग़ैर भी हम चित्र के मर्म तक सहज ही पहुँच जाते हैं। 'सामाजिक यथार्थ' के चित्रों का यह पक्ष बेहद महत्त्वपूर्ण है, क्योंकि किसी कथा या उसकी व्याख्या के बग़ैर ही हम इन चित्रों से रू-ब-रू होते हुए करुणा, सहानुभूति और संवेदना जैसे मानवता के आधारभूत पक्षों का भी अनुभव करते हैं। उदाहरण के लिए हम डेनमार्क के महान चित्रकार एरिक हेनींग्सेन (1855-1930) का बनाया हुआ चित्र 'एक घायल मज़दूर' देख सकते हैं। इस चित्र में ऐसी कोई चीज़ नहीं है जिसे जाने या समझे बग़ैर हम चित्र के मर्म तक ना पहुँच सकें। इस चित्र के शीर्षक से यदि हम अपरिचित हों, तब भी इस चित्र में यह स्पष्ट नज़र आता है कि दो लोग एक स्ट्रेचर में एक ऐसे व्यक्ति को ढोकर ले जा रहे हैं, जिसके सर और हाथ पर चोट लगी है। इस घायल व्यक्ति को घेरकर जो लोग खड़े हैं, उन्हें हम सहज ही पहचान लेते हैं। इनमें एक औरत है, जो उस घायल व्यक्ति के पास ज़मीन पर घुटनों के बल बैठी, हाथों से अपना चेहरा छिपाए रो रही है। चित्र को देखते हुए हमारी नज़र चिंतित मुद्रा में खड़े कुछ मज़दूरनुमा लोगों पर भी पड़ती है। फिर हमें चित्र की पृष्ठभूमि में विशालकाय खदान की मशीन और वहाँ काम करते हुए मज़दूर भी दिखाई पड़ते हैं। चित्र को और बारीकी से देखें तो ज़मीन पर पड़ी रुई और पट्टी भी दिखती है, साथ ही तौलिए से अपना हाथ पोछता हुआ एक व्यक्ति (चिकित्सक) भी दिखता है, जिसने शायद इस घायल व्यक्ति की प्राथमिक मरहम-पट्टी की है। इस चित्र के ऐसे ही तमाम अन्य छोटे- बड़े तत्त्व हैं, जिनसे हम समझ सकते हैं कि एक मज़दूर अपने कार्यक्षेत्र में गंभीर रूप से घायल हो गया है। इस घटना ने सभी को विचलित किया है लेकिन उसकी पत्नी, स्वाभाविक रूप से सबसे ज़्यादा विचलित है।

इस चित्र को देखते हुए हम दुर्घटना में घायल एक मज़दूर के प्रति उसके सहकर्मियों की सहानुभूति के साथ ही उस मज़दूर की पत्नी की बेबसी का अनुभव भी कर सकते हैं। चित्रकार एरिक हेनींग्सेन इस चित्र में प्रस्तुत सूक्ष्म विवरणों के माध्यम से दर्शकों को भी समान रूप से विचलित करने की कोशिश करते हैं और यही प्रक्रिया इस चित्र को सार्थक बनाती है।

- अशोक भौमिक

(लेखक के फ़ेसबुक पेज से साभार)

हल्द्वानी हिंसा के लिए संघ-भाजपा की फ़ाशीवादी राजनीति ज़िम्मेदार

8 फ़रवरी 2024 को उत्तराखंड के नैनीताल ज़िले के हल्द्वानी शहर के बनभूलपुरा इलाक़े में एक मदरसे और एक मस्जिद को गिराने के मामले को लेकर पुलिस और मुस्लिम समुदाय में ज़बरदस्त हिंसा हुई। इस हिंसा में 6 लोगों की मौत हुई और 100 के क़रीब लोग बुरी तरह ज़ख़्मी हुए। भाजपा सरकार की बुलडोजर राजनीति में हल्द्वानी की हिंसा इसकी फ़ाशीवादी नीतियों की एक अगली कड़ी है।

हल्द्वानी उत्तराखंड के कुमाऊँ क्षेत्र में आने वाला एक बहुत ही महत्वपूर्ण व्यापारिक केंद्र है। इसे राज्य की व्यापारिक राजधानी भी कहा जाता है। इसका यह नाम हल्दू नाम के वृक्ष से पड़ा है जो इस इलाक़े में पाया जाता है। वनस्पति विज्ञानी इसे 'हलदीना कारडीफ़ोलिया' कहते हैं। हल्द्वानी का अर्थ हल्दू का जंगल है। हल्द्वानी का यह इलाक़ा बरेली और नैनीताल को जाने वाले राष्ट्रीय-राजमार्गों के निर्माण के बाद बड़ा व्यापारिक केंद्र बना जो कुमाऊँ के पहाड़ी इलाक़ों को वस्तुएँ और सेवाएँ प्रदान करता है। इस इलाक़े की हुई तरक़्क़ी के बाद पंजाब, बिहार और बंगाल के इलाक़ों से लोगों ने रोज़ी-रोटी की तलाश में इस इलाक़े की ओर प्रवास किया। जिस कारण इस इलाक़े में अलग-अलग समुदायों के लोग रहते हैं।

पिछले साल जनवरी 2023 को उत्तराखंड की अदालत में बनभूरपुरा इलाक़े में बनीं बस्तियों का केस रेलवे विभाग जीत गया था।

उसी दिन से इस इलाक़े में 4000 मकानों पर बुलडोजर चलने का ख़तरा मँडरा रहा था। लेकिन मकानों को गिराने का काम सुप्रीम कोर्ट ने यह कहकर रोक दिया था कि 50 हज़ार की आबादी को इतनी जल्दी उजाड़कर दोबारा से बसाया नहीं जा सकता। लेकिन इस साल की 31 जनवरी को मौजूदा प्रशासन ने सड़क और अन्य रास्तों को चौड़ा करने के नाम पर 'नजूल ज़मीन' पर क़ब्ज़े हटाने का हुक्म जारी किया। 'नजूल ज़मीन' उस ज़मीन के लिए इस्तेमाल किया जाने वाला शब्द है जिसकी मालिकी संबंधित राज्य सरकार के पास होती है। असल में अंग्रेज़ हुकूमत के समय जो राजा और रियासतें सरकार के ख़िलाफ़ जंग छेड़ती थीं उनकी ज़मीनों को क़ब्ज़े में ले लिया जाता था। आज़ादी के बाद 'नजूल भूमि (ट्रांसफ़र) क़ानून, 1956' के तहत संबंधित राजाओं या अन्य विरोधियों के वारिस दस्तावेज़ों की कमी के कारण ज़मीनों की मालिकी साबित नहीं कर सके तो इस तरह की ज़मीनों को 'नजूल ज़मीन' क़रार दे दिया गया। फिर किसी ख़ास संबंधित मालिक के ना रहते इन ज़मीनों को 15 से 99 सालों के लिए पट्टे पर दे दिया जाता है। संबंधित सरकार इस ज़मीन पर जनकार्य जैसे कि स्कूल-अस्पताल बना सकती है या हाउसिंग सोसायटी को पट्टे पर दे सकती है। हल्द्वानी के इस इलाक़े में 1937 में मोहम्मद यासीन के नाम के व्यक्ति को खेती करने के लिए यह 'नजूल ज़मीन' दी गई थी।

जिन इमारतों को हटाना था उनमें एक मरियम मस्जिद और एक अब्दुल रज़ाक ज़करिया मदरसा शामिल है। लेकिन स्थानीय नेताओं ने सरकार तक पहुँच की और मौक़े की नाज़ुक स्थिति को देखते हुए मुख्यमंत्री पुष्कर धामी ने इस जगह को सील कर दिया। लेकिन 8 फ़रवरी को जब पीड़ित पक्ष अदालत में ज़मीन की मालिकी हासिल करने के लिए गया, तो उसी दिन ही प्रशासन ने अदालत के हुक्म के बग़ैर ही संबंधित इलाक़े में इमारतें गिराने का हुक्म दे दिया। पीड़ित पक्ष के वकील का कहना है कि हाई कोर्ट ने ना हमें ही कोई स्टे दिया है, लेकिन ना ही प्रशासन को किसी भी तरह की तोड़फोड़ की कोई इजाज़त दी है। ज़िला प्रशासन ने बहुत ही जल्दबाज़ी में इमारतें गिराने का हुक्म दिया है। इस दौरान पुलिस ने लोगों पर लाठीचार्ज किया और गोलीबारी भी की गई। पुष्कर धामी सरकार द्वारा इंटरनेट सेवाएँ बंद कर दी गईं, कर्फ़्यू लगा दिया गया और देखते ही गोली मारने के हुक्म भी जारी किए गए। 6 निवासियों की मौत हो गई। 100 के क़रीब ज़ख़्मी हुए और 78 लोगों को दंगे भड़काने के लिए गिरफ़्तार कर लिया गया। इसके अलावा दलित आबादी के एक क्षेत्र में जहाँ केवल 8 मुस्लिम परिवार ही रहते थे, वहाँ भी भीड़ ने मुस्लिम समुदाय के लोगों को निशाना बनाया। सोशल मीडिया पर इस बात का प्रचार भी किया गया कि पिछले 20 सालों में मुस्लिम आबादी एक हज़ार से बढ़कर एक लाख से भी ऊपर हो गई है। जबकि भारत सरकार के अपने आँकड़े इन हवाई दावों को झूठा साबित करते हैं। पुष्कर धामी की सरकार ने कहा है कि जहाँ मस्जिद और मदरसा गिराया गया है, उस जगह पर पुलिस थाना बनाया जाएगा।

अल्पसंख्यक भाईचारे का कहना है कि जिस जगह पर मस्जिद थी वो जगह 'मलीन बस्ती एक्ट, 2016' के तहत एक नोटिफ़ाइड कालोनी थी। यह क़ानून इसलिए बनाया गया था ताकि अनधिकृत बस्तियों में रहने वाले लोगों की परिस्थितियों में सुधार किया जा सके। जिस इलाक़े में मदरसा और मस्जिद थी वो इलाक़ा उत्तराखंड सरकार द्वारा पारित मलीन बस्ती एक्ट, 2016 के तहत 'कैटेगरी ए' में आता है। 'कैटेगरी ए' में आने वाली बस्तियों के बाशिंदों को उसी समय मालिकी के हक़ दे दिए जाते हैं। 'कैटेगरी बी' में आने वाली झुग्गियों को उनकी भौगोलिक स्थिति और वातावरण की परिस्थितियाँ देखने के बाद ख़ाली करने के हक़ दिए जा सकते हैं। 'कैटेगरी सी' में उन इलाक़ों की बस्तियों को शामिल किया जाता है जहाँ वातावरण बहुत दूषित हो और साफ़ हवा-पानी की समस्याएँ हों। 'कैटेगरी ए' में आने के बावजूद भी मौजूदा सरकार ने इस इलाक़े में बुलडोजर चलाने की जल्दबाज़ी की।

भाजपा सरकार की अल्पसंख्यकों के प्रति नफ़रत स्पष्ट ज़ाहिर है। उत्तराखंड की सरकार द्वारा साल 2023 में मुस्लिम भाईचारे से संबंधित 300 इमारतों को केवल 90 दिनों में गिराया गया था। पूरे भारत में जहाँ-जहाँ भी भाजपा सरकार है, बुलडोजर की राजनीति केवल मुस्लिम भाईचारे के ख़िलाफ़ ही इस्तेमाल की जाती है। साल 2019 में मोदी के नेतृत्व वाली भाजपा सरकार ने संसद में एक क़ानून पारित करके 1731 ग़ैर-क़ानूनी कालोनीयों को नियमित किया। 40 लाख लोगों को ज़मीनों के पट्टे (पट्टा = 15 से 99 सालों के लिए ज़मीन की मालिकी) दिए गए। एक ख़ास भाईचारे के वोट हासिल करने के लिए यह क़ानून बनाया गया। सवाल पैदा होता है कि अगर 40 लाख लोगों को ज़मीनें पट्टे पर दी जा सकती हैं, तो 4000 घरों को क्यों नहीं। यह भाजपा की अल्पसंख्यकों को हाशिए पर धकेलने की राजनीति है। इस फ़ाशीवादी राजनीति को नंगा करने और इसके ख़िलाफ़ मेहनतकश जनता का जुझारू आंदोलन खड़ा करने की ज़रूरत है।

– गुरमन

नई सवेर पाठशाला के अनुभव

पाठक दोस्तो! 'नई सवेर पाठशाला' में बच्चों को पढ़ाने का अनुभव मैं 'मुक्ति संग्राम' अख़बार के ज़रिए आपसे साझा कर रहा हूँ। मुझे नई सवेर पाठशाला मौली जागराँ (चंडीगढ़) से जुड़े एक साल से ज़्यादा समय हो गया है। शुरू-शुरू में मैं सोचता था कि मैं बच्चों को कैसे सँभालूँ और बढ़िया तरीक़े से कैसे पढ़ाऊँ। लेकिन जैसे हर काम के मामले में होता है कि शुरू में काम करना मुश्किल होता है, लेकिन जब आप काम करते जाते हैं तो बहुत सारे डर और चिंताएँ आसानी से ही ख़त्म हो जाती हैं। मैंने एक साल के दौरान बच्चों को काफ़ी कुछ सिखाया और बहुत कुछ बच्चों से ख़ुद भी सीखा।

'नई सवेर पाठशाला' का मक़सद बच्चों को सिर्फ़ स्कूली पढ़ाई करवाना नहीं, बल्कि उन्हें एक अच्छा इंसान बनाना और उनके अंदर इंसानी भावनाओं को पैदा करके एक नया इंसान बनाना है। पढ़ाने वाले के लिए पढ़ाई के साथ-साथ बच्चे के मन में चलने वाले विचारों को जानना भी ज़रूरी होता है। इसी मक़सद के साथ मैं अक्सर ही मेरे पास पढ़ने आने वाले बच्चों के माँ-बाप से मिलने के लिए उनके घर जाता रहता हूँ। कई बच्चों को यह सुनकर बहुत ख़ुशी होती है कि भइया आज हमारे घर आएँगे। कई बार कुछ माँ-बाप भी हैरानी से ही पूछते हैं कि आप मुफ़्त ट्यूशन क्यों पढ़ाते हो और क्या आप सभी बच्चों के घरों में जाते हो?

हमारी शिक्षा प्रणाली अध्यापक और विद्यार्थी को एक-दूसरे से दूर करती है। इस प्रणाली के तहत अध्यापक सिर्फ़ पाठ्यक्रम पूरा करवाने के लिए स्कूल आता है और बच्चा सिर्फ़ पाठ्यक्रम पूरा करने के लिए। मुझे बच्चों के माँ-बाप आकर बताते हैं कि उनके बच्चे 'नई सवेर पाठशाला' में पढ़ाई के तौर-तरीक़ों की तारीफ़ करते हुए अक्सर ही बातें करते हैं कि यहाँ मार नहीं पड़ती, किताबों के अलावा समाज, दुनिया-भर की बातें होती हैं, बच्चों वाली फ़िल्में दिखाई जाती हैं आदि। लेकिन माँ-बाप मेरे सामने बच्चों की ढेरों शिकायतें करते हैं कि हमारे बच्चे यह नहीं करते, हमारे बच्चे वो नहीं करते और भूल जाते हैं कि बच्चे होने का मतलब ही यही है कि यह ना करना और वो ना करना, बल्कि वो करना जिस काम के लिए उनका दिल करे।

ऐसे ही कुछ क़िस्से मैं आपके साथ साझा कर रहा हूँ। मैं यहाँ ऐसी ही दो घटनाओं के बारे में बताना चाहता हूँ जो मुझे बच्चों के और करीब लाईं।

बच्चों के मन फूलों के समान कोमल

(अगले पन्ने पर जारी)

(पिछले पन्ने से आगे)

होते हैं। उन्हें छेड़ना या ठेस नहीं पहुँचाना चाहिए, लेकिन हमारे समाज में इस बात का एहसास बहुत कम है। अकसर बच्चों को मार-पीटकर और डरा-धमकाकर रखा जाता है जिसके कारण उनके अंदर आत्म-विश्वास की कमी पैदा हो जाती है। ऐसी ही एक लड़की जिसका नाम अंकिता है, हमारे पास ट्यूशन पढ़ने के लिए आती है। शुरू-शुरू में वो कुछ भी नहीं बोलती थी, बस आकर चुपचाप बैठ जाती थी और चली जाती थी। धीरे-धीरे उसके साथ घर-परिवार के बारे में, समाज के बारे में बातें होती और पढ़ाई के अलावा अन्य कामों में उसे शामिल किया जाता। और अगर आज आप उससे मिलें, तो उसमें एक नया आत्म-विश्वास और नई ऊर्जा दिखेगी जो उसमें डेढ़ साल पहले बिल्कुल भी नहीं थी। इस बात का अंदाज़ा आसानी से इस बात से लगाया जा सकता है कि हमेशा अपने पापा से घबराने वाली इस लड़की ने 25 दिसंबर को सवाल किया कि आप सभी मनुस्मृति जलाओ दिवस मनाते हो, लेकिन ख़ुद अपने अंदर की मनुवादी सोच का पल्ला क्यों नहीं छोड़ते?

एक साल पहले की बात है। उसके पापा ने उसकी मम्मी को बहुत मारा, जिसके कारण उसकी मम्मी की कलाई टूट गई। इस घटना का उसके मन पर बहुत गहरा असर हुआ और वो कई दिन ट्यूशन नहीं आई। आख़िरकार मैं कुछ दिनों के बाद उसके घर गया और पूछा तो उसने कुछ नहीं बताया, बस रोने लगी और मुझे बस इतना कहा कि मैं कल ट्यूशन पर आकर बात करूँगी। मैं उसे दिलासा देकर वापस चला गया। अगले दिन आकर उसने अपने पापा की सारी करतूत बताई और मुझसे पूछा कि "भइया हम जो बराबरी, न्याय, निजी आज़ादी और मानव अधिकारों जैसी चीज़ें किताबों में पढ़ते हैं, वो मुझे परिवार या समाज में कहीं भी नज़र नहीं आतीं। क्यों समाज में औरतों को नाममात्र-सा दोयम दर्जे का नागरिक समझा जाता है, जहाँ उन्हें घर के काम करने के अलावा और किसी काम या अधिकार से वंचित रखा जाता है?" सच बताऊँ तो यह सवाल उसकी ज़ुबान और उसकी आँखें सिर्फ़ मुझसे नहीं कर रही थीं, बल्कि इस पूरी व्यवस्था से कर रही थीं। मुझे लगता है कि यह सवाल सिर्फ़ अंकिता का नहीं बल्कि देश की लाखों-करोड़ों उन लड़कियों का है जो इस व्यवस्था की बेइंसाफ़ी को नज़दीक से महसूस कर रही हैं। मैंने उससे इसके बारे में बात की कि यह समाज ऐसा क्यों है, औरतों के ख़िलाफ़ होने वाली हिंसा का मुख्य कारण क्या है और बताया कि औरतों की स्थिति और यह समाज ज़रूर ही बदलेगा और एक ऐसा समाज बनेगा, जहाँ औरत-मर्द के बीच बराबरी होगी और तब किसी अंकिता जैसे बच्चों को अपनी माँ को मार खाते हुए नहीं देखना पड़ेगा। बात करने के बाद उसका चेहरा और आँखें जो पहले निराशा ब्याँ कर रहे थे, अब वो इस सबके ख़िलाफ़ गुस्से और भविष्य की ओर एक उम्मीद में बदल गए।

पाठक दोस्तों जैसा कि आप जानते हैं कि आज की यह पूँजीवादी व्यवस्था इंसान को स्वार्थी और मतलबी बनाना चाहती है, जहाँ कोई भी इंसान किसी पर भी आसानी से यक़ीन ना करे और बस अपने मतलब तक ही सोचे। इलाक़े में मुफ़्त ट्यूशन पढ़ाए जाने का सुनकर एक मज़दूर औरत, जिसका नाम सुमन है, मेरे पास अपने दो बच्चों को ट्यूशन लगाने के लिए पता करने आई। मैंने उन्हें ट्यूशन के बारे में बताया। उन्होंने कहा कि उनका एक बेटा है जो नौवीं कक्षा में पढ़ता है और दूसरी बेटी है जो आठवीं कक्षा में पढ़ती है। जाते समय उन्होंने चिंता से पूछा कि क्या आप सिर्फ़ लड़के ही पढ़ाते हो या कोई लड़की भी आपके साथ बच्चों को पढ़ाती है? मैंने उन्हें कहा कि फ़िलहाल यहाँ तो हम लड़के ही हैं लेकिन अन्य जगहों पर लड़कियाँ भी पढ़ाती हैं। अगले दिन उनका बेटा नितेश ही ट्यूशन आया। 10 दिन के बाद मैं उनके घर गया तो वो हैरान थे कि उनके बच्चे को पढ़ाने वाला उनके घर आया है। शायद ऐसा कुछ उन्होंने पहली बार देखा और जाना होगा। उन्होंने चाय-पानी की व्यवस्था की, मैंने उनके साथ बातें की जिसकी वजह से वो मेरे साथ सहज हो गए। ख़ासतौर पर वो शक जो उनके मन के अंदर था, वो अब ख़त्म हो गया। बातों-बातों में पता लगा कि वो वाल्मिकी भाईचारे से संबंध रखते हैं। पहले शायद जात-पात पर किसी ने उनके घर इतना खुलकर बातें नहीं की या चाय-पानी नहीं पिया था।

उनका बेटा मेरे पास विज्ञान और गणित की ट्यूशन पढ़ने के लिए आता है। दिवाली के दो दिन पहले उन्होंने मुझे अपने घर खाने पर बुलाया। वहाँ जाकर पता लगा कि नितेश जो पहले अकसर ही विज्ञान के विषय में फेल हो जाता था, इस बार प्री-बोर्ड में 60 प्रतिशत अंकों से पास हो गया है। मैंने उनके साथ समाज में जातिवाद, अमीरी-ग़रीबी और बच्चों और उनकी पढ़ाई के बारे में और भी बहुत-सी बातें की। जब मैं जाने लगा तो उन्होंने मुझे दिवाली की मिठाई देते हुए हमारे काम के लिए शाबाशी दी और कहा, "अब मेरे दो बेटे हैं एक नितेश और एक आप।"

जाते समय मैं सोच रहा था कि ऊपर से अनजान दिखने वाले लोग भी अंदर से कितने अच्छे होते हैं। इस व्यवस्था ने उनके मन में जो भरोसा ना करने की पर्त चढ़ा दी है, वो थोड़ा-सा हाथ बढ़ाने पर ही उतरकर गिर पड़ती है और वो पुराने दोस्त या अपने किसी जान-पहचान वालों की तरह ही आपसे बातें करने लगते हैं। आज इस दोस्ती के साथ-साथ, मानवता के बेहतर भविष्य की उम्मीद को बचाए रखने की ज़रूरत है।

– पुष्पिंदर (चंडीगढ़)

पाकिस्तान में चुनाव – बदतर हो रहे जनता के हालात के बीच लोकतंत्र की नौटंकी

जनता की बढ़ती आर्थिक मुश्किलों के बीच 8 फ़रवरी को पाकिस्तान में राष्ट्रीय असेंबली के चुनाव हुए। जनता का पूरे सरकारी तंत्र से हुआ मोहभंग वोट प्रतिशत में भी दिखा और केवल 47.6% लोग ही वोट देने पहुँचे। बड़े स्तर पर चुनावी धाँधली और फ़ौजी दख़लअंदाज़ी के दोषों के बीच किसी भी पार्टी को स्पष्ट बहुमत नहीं मिला। जनता द्वारा सभी को नकारने के फ़ैसले के बावजूद जोड़-तोड़ के ज़रिए सरकार बनाने की ज़ोर-अज़माइश की गई। पाकिस्तान मुस्लिम लीग (नवाज़) के नेतृत्व में 6 पार्टियों का मौक़ापरस्त गठजोड़ बन गया। इस गठजोड़ के तहत मुस्लिम लीग का शाहबाज़ शरीफ़ प्रधानमंत्री की कुर्सी पर और पी.पी.पी. का आसिफ़ जरदारी राष्ट्रपति की कुर्सी पर बैठ गया है।

इस चुनाव ने पिछले किसी भी चुनाव से अधिक पाकिस्तान के खस्ताहाल पूँजीवादी जनवाद को नंगा किया है। फ़ौजी दख़लअंदाज़ी और हुक्मरान पार्टियों के जन-विरोधी किरदार ने जनता का इस चुनावी ड्रामे से मोहभंग कर दिया है। आधी से अधिक आबादी का वोट देने के लिए ही ना पहुँचना और उसमें से भी किसी को स्पष्ट बहुमत ना मिलना दर्शाता है कि क्यों कोई भी पार्टी असल में जन-समर्थन हासिल होने का दावा नहीं कर सकती। 266 सीटों वाली क़ौमी असेंबली में आज़ाद उम्मीदवारों को 103 (जिनमें पी.टी.आई. के हिमायती 93 उम्मीदवार भी हैं), पाकिस्तान मुस्लिम लीग (नवाज़) को 75, पाकिस्तान पीपुल्स पार्टी को 54 सीटें मिली हैं यानी कोई भी स्पष्ट बहुमत प्राप्त नहीं कर पाया।

दूसरा ये चुनाव ऐसे माहौल में हुए हैं, जब पाकिस्तान में महँगाई सभी रिकार्ड तोड़कर 30% के पार पहुँच चुकी है। अनाज की महँगाई 100% तक को छू रही है। आबादी का लगभग आधा हिस्सा भोजन असुरक्षा का शिकार है। पिछले सालों में ही बच्चों के कुपोषण में 50% वृद्धि हुई है और 2.8 करोड़ बच्चे स्कूल की पढ़ाई से भी महरूम हैं। लेकिन दिवालिया होने के किनारे खड़े मुल्क़ में राजनीतिक पार्टियों की खींचातानी ने बेहाल जनता के ज़ख़्मों पर नमक छिड़कने का काम ही किया है। ऐसी परिस्थितियों में जनवाद का बेसुरा राग अलापकर जनता को भरमाने की कोशिश की जा रही है, जो इस भद्दे ड्रामे को और भी घिनौना बना रहा है।

इस चुनाव में ज़ोर अज़माइश करने वाले हुक्मरान वर्ग की तीनों मुख्य राजनीतिक पार्टियों पर भी नज़र डालनी ज़रूरी है कि कैसे तीनों ने ही पाकिस्तान की मेहनतकश जनता से धोखा करके अपनी राजनीतिक रोटियाँ सेंकी हैं और पूँजीपतियों की सेवा की है। चुनाव से पहले पाकिस्तान के तीन बार राष्ट्रपति रह चुके नवाज़ शरीफ़ को एक बार फिर से दूध का धुला साबित करने की नाकाम कोशिश की गई, लेकिन नवाज़ शरीफ़ की मेहनतकश जनता से द्रोह, पूँजीपति वर्ग से यारी और साम्राज्यवाद-परस्ती किसी से छिपी नहीं है। तीन बार सत्ता पर काबिज़ हो कर और पंजाब का मुख्यमंत्री रहते हुए उसने और उसके परिवार ने भ्रष्टाचार के जो रिकॉर्ड क़ायम किए हैं, उनकी मिसाल पाकिस्तान के इतिहास में कोई दूसरी नहीं मिलती। पंजाब की वज़ीरी इस शरीफ़ ख़ानदान को फ़ौजी जरनैल ज़िया उल हक़ के दौर में पहली बार मिली थी और तब से ही इस लुटेरे ख़ानदान ने पंजाब और पाकिस्तान की मेहनतकश जनता को लूटने में कोई क़सर नहीं छोड़ी है। पिछले डेढ़ साल से राष्ट्रपति की गद्दी पर बैठे शाहबाज़ शरीफ़ ने भी पहले महँगाई और बेरोज़गारी दूर करने के झूठे दावे किए, लेकिन सत्ता में आने के तुरंत बाद ख़ुद को बेबस बताना शुरू कर दिया और कहा कि जनता को "मुश्किल" फ़ैसलों के लिए तैयार रहना होगा। जिसका सीधा मतलब उन पर महँगाई-बेरोज़गारी का नया पहाड़ लादना था। शरीफ़ मंत्रिमंडल के मंत्री इशाक़ डार को पहले आर्थिक संकट को हल करने वाले मसीहा के तौर पर पेश किया गया, लेकिन उसी के कार्यकाल में मुल्क़ दिवालिया होने की क़गार पर आ गया। लाज़िमी तौर पर इसका भार आम जनता पर डाला जाएगा। अपने कार्यकाल में शरीफ़ ख़ानदान लखपति

(अगले पन्ने पर जारी)

(पिछले पन्ने से आगे)

से करोड़पति, अरबपति, खरबपति बन चुका है। इस सबने शरीफ़ ख़ानदान के सदस्यों के बीच उँचे से ऊँचा ओहदा हासिल करने की खींचतान की भी बढ़ा दिया है।

दूसरी मुख्य पार्टी, पाकिस्तान पीपुल्स पार्टी (पी.पी.पी.) की भूमिका भी कोई अलग नहीं। शाहबाज़ शरीफ़ के छोटे कार्यकाल में पी.पी.पी. पार्टी के नेता बिलावल भुट्टो ने पाकिस्तान मुस्लिम लीग (नवाज़) के साथ गठजोड़ के तहत विदेश मंत्री रहते हुए सत्ता सुख हासिल किया और यह पार्टी भी जनता के ख़िलाफ़ पारित की गईं जन-विरोधी नीतियों में बराबर की हिस्सेदार रही है। चुनाव से पहले मीडिया द्वारा प्रचार किया गया कि बिलावल की अपने बाप आसिफ़ अली जरदारी से अनबन हो गई है। लेकिन ऐसा प्रचार इसलिए ही किया गया था कि बेटे को अपने बाप के बदनाम अक्स से कुछ बचाया जा सके। ग़ौरतलब है कि आसिफ़ अली जरदारी अपने राष्ट्रपति काल के दौरान 'मिस्टर 10 परसेंट' के नाम से बदनाम हुआ था यानी यह ख़ानदान पाकिस्तान में पारित होने वाले हर प्रोजेक्ट में अपना तय हिस्सा रखता था। ना केवल इस ख़ानदान ने अब इस हिस्से में बढ़ोतरी कर ली है, बल्कि बाप के रास्ते पर चलते हुए बेटे ने भी लूट के नए रिकॉर्ड क़ायम किए हैं। बाप-बेटे की यह जोड़ी सिंध राज्य में पिछले 15 साल से हुकूमत कर रही है, जहाँ इस समय के दौरान भुखमरी और ग़रीबी में कई गुना बढ़ौतरी हुई है। अपने अधिकारों के लिए संघर्ष कर रहे अध्यापकों, डॉक्टरों और मेडिकल स्टाफ़ समेत संघर्षरत जनता के अन्य हिस्सों का दमन किया गया है। स्थानीय जनता की ज़मीनें ज़बरन हड़पकर अमीरों के लिए नई रिहाइशी कालोनियाँ काटने के मामले में भी यह परिवार ख़ासा बदनाम हुआ है। जब इस परिवार के ख़ास और बदनाम पुलिस अफ़सर राव अनवर जैसों ने इस लूट के लिए क़त्ल के अलावा अन्य कई कुकर्मों को अंजाम दिया। कई रिपोर्टों के मुताबिक़ तो अनवर ने ज़मीनें हड़पने और अन्य आपराधिक गतिविधियों के लिए 450 से अधिक क़त्लों को अंजाम दिया है! भुट्टो ख़ानदान की इस नीति का सबसे अधिक फ़ायदा लेने वाला शख़्स मलिक रियाज़ है, जिसे पाकिस्तान में रियल एस्टेट का राजा और सबसे अमीर आदमी बताया जाता है। जरदारी, मलिक रियाज़ और फ़ौजी जरनैलों की साँठगाँठ पाकिस्तान में किसी से छिपी नहीं हुई।

लेकिन पी.पी.पी. के जन-विरोधी कुकर्मों की शुरुआत अभी नहीं हुई है। 1988 में बेनज़ीर भुट्टो के कार्यकाल में ही पाकिस्तान में निजीकरण की शुरुआत हुई थी और फिर 1990 के दौर में सरकार ने निजी कंपनियाँ के साथ बिजली उत्पादन के समझौते किए थे। इन समझौतों के बदले पी.पी.पी. के नेताओं द्वारा बड़ी रिश्वतें खाने के मामले भी सामने आए थे। लेकिन पूँजीपतियों और अपने ख़ुद के फ़ायदों के लिए इन नेताओं द्वारा पाकिस्तान की जनता को गिरवी रखने के नतीजे जनता आज तक भुगत रही है। इन समझौतों के तहत अगर ये कंपनियाँ बिजली का उत्पादन ना भी बढ़ाएँ, तो भी जनता को इनकी क्षमता अदायगी के नाम पर बिल भरने पड़ते थे, जबकि दूसरी ओर बिजली उत्पादन के नाम पर इन पूँजीपतियों को तेल समेत सारा कच्चा माल, बिना टैक्स के, बेहद कम क़ीमतों पर मुहैया करवाया जाना था। उस समय शुरू हुई निजीकरण की दौड़ ने आज अपने दायरे में पाकिस्तान अंतरराष्ट्रीय एयरलाइन, डाक विभाग, रेलवे, बिजली विभाग और अन्य बड़ी सरकारी संस्थाओं को भी ले लिया है। अंतरराष्ट्रीय मुद्रा कोष से मिली "राहत" के बदले अभी सरकारी अस्पतालों और शिक्षा संस्थानों के समेत बचे-खुचे सरकारी संस्थानों का भी निजीकरण किया जाना है और इनमें काम करने वाले सरकारी मुलाज़िमों की बड़े स्तर पर छँटनी की जानी है। इसी तरह सरकारी पेंशन व्यवस्था भी ख़त्म की जानी है।

अब बात करते हैं इमरान ख़ान के नेतृत्व वाली पाकिस्तान तहरीक़-ए-इंसाफ़ (पी.टी.आई.) की। इसकी चर्चा सबसे ज़्यादा हो रही है। इस चुनाव में पी.टी.आई. पर अपने नाम पर चुनाव लड़ने का प्रतिबंध लगा दिया गया था और इसके मुखिया इमरान ख़ान को जेल में बंद कर दिया गया था। इसीलिए इस पार्टी के उम्मीदवारों ने आज़ाद उम्मीदवारों के तौर पर चुनाव लड़ा था। इसके अलावा फ़ौजी जरनैलों, अदालत और अन्य पार्टियों द्वारा पी.टी.आई. उम्मीदवारों पर तरह-तरह के प्रतिबंध लगाए गए। यह कुछ साल पहले की स्थिति से बिल्कुल विपरीत है, जब इसी पी.टी.आई. को फ़ौजी जरनैलों द्वारा ही उभारा गया था और इसे नवाज़ शरीफ़ और जरदारी की पार्टी के मुक़ाबले पर खड़ा किया गया था। पाकिस्तानी फ़ौज द्वारा हुक्मरान वर्ग के हितों के मुताबिक़ हमेशा ही कभी इस और कभी उस राजनीतिक पार्टी के बीच और कभी एक को दूसरी के विरोध में खड़ा करके ताल-मेल बैठने की कोशिश की जाती रही है। ऐसा करते हुए वे ख़ुद इस राजनीतिक सर्कस से ऊपर होने की नौटंकी करते हैं। पी.टी.आई. के मुख्य नेता इमरान ख़ान द्वारा चीन-रूस के पक्ष में स्टैंड लेने के कारण पाकिस्तानी फ़ौज का बड़ा हिस्सा उससे नाराज़ हो गया और वही फ़ौजी जरनैल अब पी.टी.आई. की जड़ें काटने लगे, जिसे इन्होंने ख़ुद बीते दो दशकों में खड़ा किया था। इस चुनाव में पी.टी.आई. को मिल रहा समर्थन इसकी जनपक्षधरता का सबूत नहीं है, बल्कि हुक्मरान पार्टी के ख़िलाफ़ जनता की नफ़रत की प्रतिक्रिया है।

भले ही पी.टी.आई. को जनता के इस आक्रोश का फ़ायदा मिल रहा है, लेकिन ख़ुद इस पार्टी ने 2018-22 के अपने कार्यकाल में घोर जन-विरोधी होने का नमूना पेश कर दिया था। इमरान ख़ान के इस 4 सालों के राज में ही महँगाई और बेरोज़गारी रिकॉर्ड रफ़्तार से बढ़ी थी और साथ ही साथ मज़दूरों-मुलाज़िमों पर बहुत ही बुरे तरीक़े से अत्याचार किया गया था। राजधानी इस्लामाबाद में सरकारी मुलाज़िमों के एक प्रदर्शन पर अत्याचार करने के बाद इमरान मंत्रालय में गृहमंत्री शेख़ रशीद ने बयान दिया था कि "चूँकि आँसू गैस वग़ैरा काफ़ी समय से इस्तेमाल नहीं की गई थी, इसलिए इसे परखना ज़रूरी था।" सरकार के विरुद्ध छोटे-छोटे प्रदर्शन आयोजित करने पर और सोशल मीडिया पर सरकार के ख़िलाफ़ पोस्ट डालने पर भी अनेकों राजनीतिक कार्यकर्ताओं को गिरफ़्तार किया गया, उन पर केस दर्ज किए गए। पुलिसिया तंत्र को कैसे इमरान सरकार ने खुला हाथ दिया इसकी प्रत्यक्ष मिसाल थी पश्चिमी पंजाब के शहर साहीवाल में घटी घटना, जिसमें पुलिस ने गाड़ी में बैठे एक परिवार के ही चार लोगों को क़त्ल कर दिया था। इस पुलिसिया वहशीपन के ख़िलाफ़ जनता के ज़बरदस्त ग़ुस्से को दरकिनार करते हुए ना केवल इमरान सरकार ने आड़े-टेढ़े ढंग से घटना को जायज़ ठहरने की कोशिश की, बल्कि इन पुलिस वालों को अदालत के ज़रिए छुड़वाया गया और पीड़ित परिवार को मजबूर करके समझौता भी करवाया गया। इमरान सरकार के ऐसे जुर्मों की सूची लंबी है।

ऊपर की गई चर्चा का कुल निचोड़ यह है कि पाकिस्तान में चुनाव लड़ रही उपरोक्त सब बड़ी पार्टियाँ इसी लुटेरी पूँजीवादी व्यवस्था को बचाने का ही काम करती हैं। जन-विरोधी नीतियाँ लागू करने के मामले में ये सभी एक-दूसरे से बढ़कर हैं। दिवालिया होने के क़गार पर खड़े इस मुल्क़ में पूँजीवादी जनवाद की यह भद्दी नौटंकी असल में हुक्मरान वर्ग और जनता के बीच बढ़ती दूरी को ही दर्शाता है। पाकिस्तान की जनता में अपने तजुर्बे से ही यह अहसास पैदा होता जा रहा है कि ये सभी हुक्मरान पार्टियाँ असल में ठगों, गुंडों के संगठित गिरोह हैं, जो उनके मुँह से आख़िरी निवाला भी छीन लेना चाहते हैं।

लेकिन अच्छी बात यह है कि पाकिस्तान की मेहनतकश जनता इस हालत में मूकदर्शक बने रहने की जगह आगे आकर सरकारी दमन का विरोध भी कर रही है। पाकिस्तानी कश्मीर में बढ़ाकर भेजे गए बिजली बिलों के विरुद्ध पिछले 6 महीनों से व्यापक रोष प्रदर्शन जारी हैं और लाखों लोगों ने बिल भरने से मना कर दिया है। इसी प्रकार गिलगित-बाल्टिस्तान में आटा सब्सिडी ख़त्म करने के विरुद्ध, बेहद ठंड के बावजूद, बड़ी गिनती में जनता सड़कों पर उतरी है। बलोचिस्तान में कई हज़ार औरतों द्वारा तुरबत शहर से राजधानी इस्लामाबाद की ओर मार्च निकालकर पाकिस्तानी हुकूमत और फ़ौज द्वारा बलोच नौजवानों की गिरफ़्तारियों, गुमशुदगियों और क़त्लों के ख़िलाफ़ रोष ज़ाहिर किया गया, जिसे बलोचिस्तान में भारी हिमायत मिली है। कराची के बलोच इलाक़ों में दो दर्जन से अधिक जगहों पर बलोचों के अधिकारों से सहमति ज़ाहिर करते हुए दर्जन से अधिक प्रदर्शन हुए जिनमें हज़ारों की तादाद में लोग शामिल हुए। इसी प्रकार अफ़ग़ानिस्तान से सटे पश्तून इलाक़े चमन में हज़ारों लोग तीन महीनों से स्थानीय पश्तो आबादी के ख़िलाफ़ पारित किए गए क़ानूनों का विरोध कर रहे हैं। पंजाब की बात करें तो यहाँ छँटनी के ख़िलाफ़ हज़ारों-हज़ार सरकारी अध्यापकों ने सड़कों पर उतरकर सरकार विरोधी प्रदर्शन आयोजित किए हैं, जिन्हें अन्य सरकारी मुलाज़िमों का भी साथ मिला है। पिछले कुछ महीनों में ही हुए इन व्यापक प्रदर्शनों में बड़ी गिनती में जनता का और ख़ासकर औरतों का सड़कों पर आना बहुत ही मुबारक़ संकेत है। आने वाले समय में हम और भी बड़े प्रदर्शन देख सकते हैं। दूसरा, ये सभी प्रदर्शन किसी विरोधी पार्टी द्वारा आयोजित नहीं किए गए, बल्कि जनता के रोष से जन्मे स्वत:स्फूर्त प्रदर्शन हैं। ये हुक्मरान पार्टियों पर से जनता का भरोसा उठ जाने की प्रत्यक्ष मिसाल है। आज इस व्यापक ग़ुस्से को संगठित करने, इंक़लाबी रूप देने की ज़रूरत है।

पाकिस्तानी क़ब्ज़े वाले कश्मीर के प्रदर्शनों में आवामी एक्शन कमेटियों का उभरना खुशनुमा परिघटना है जो आज सरकार के किसी भी संस्थान से अधिक शक्ति रखती हैं और जिनके संदेश पर किसी भी समय लाखों के जुटान हो रहे हैं। यही मिसाल अब गिलगिट-बाल्टिस्तान में भी दोहराई जा रही है। आज जनता के इसी ग़ुस्से को संगठित शक्ल देने की, जनता को बड़े स्तर पर यह जचाने की ज़रूरत है कि उनका भला ना तो पश्चिमी साम्राज्यवादियों के नेतृत्व वाले अंतरराष्ट्रीय मुद्रा कोष या संसार बैंक ने और ना ही चीन-रूस गुट ने और ना ही मुल्क़ में इनकी हिमायती भ्रष्ट पार्टियों ने करना है। आज की पूँजीवादी व्यवस्था में उनके पास एक या दूसरे दल द्वारा ठगे जाने के अलावा और कोई चारा नहीं। उनकी मुक्ति केवल समाजवादी निज़ाम में ही संभव है और इसीलिए आज की फ़ौरी ज़रूरत एक सच्ची इंक़लाबी पार्टी खड़ी करने की है।

– मानव

आबादी: एक समस्या?

(दूसरी किश्त)

*(आबादी को एक बड़ी समस्या के रूप में पेश किया जाता है। इसके बारे में **मनाली चक्रवर्ती** ने बहुत ही दिलचस्प लेख लिखा था जो 'वैकल्पिक आर्थिक सर्वे, 2009-2010' में छपा था। 'मुक्ति संग्राम' में छापने के लिहाज से लेख थोड़ा लंबा होने के चलते हम इसे तीन किश्तों में प्रकाशित कर रहे हैं। यह दूसरी किश्त है। पहली किश्त फ़रवरी 2024 अंक में छपी थी।)*

अब यह जानने की कोशिश करते हैं कि आख़िर ग़रीब परिवारों में ही ज़्यादा बच्चे क्यों होते हैं? सुनने में आया है कि हमारे मौजूदा स्वास्थ्य मंत्री का मानना है कि बच्चे जनना या उसकी बुनियादी प्रक्रिया में शामिल होना ग़रीब जनता के लिए मनोरंजन का एक सस्ता और उत्तेजक साधन है। एक संवेदनशील प्रगतिवादी नेता होने के कारण उन्होंने इस पर क़ाबू पाने का एक अभिनव तरीक़ा ढूँढ़ लिया है – गाँव-गाँव में बिजली। लोग देर रात तक टीवी का आनंद उठाएँगे और फिर चैन की नींद सो जाएँगे, तो मसला जड़ से सुलझ जाएगा। वाह री कल्पना-शक्ति की उड़ान! बिजली के बड़े सारे उपयोग सुने हैं, पर यह तो लीक से मीलों हटकर है। माननीय स्वास्थ्य मंत्री पुरुष हैं, सौभाग्यवश वह कभी माँ नहीं बन सकते, इसलिए बच्चा पैदा करने का सबसे आसान विकल्प उनके लिए मनोरंजन हो सकता है। पर जिस माँ ने एक भी बच्चा अपने गर्भ में धारण किया है, नौ महीने तक तिल-तिल कर उसका पोषण किया है, प्रसव पीड़ा सही है और फिर अपने ख़ून को दुग्ध सुधा के रूप में बच्चे के नन्हे भूखे हलक में उतारा है, वह उसे महज़ मनोरंजन नहीं मान सकती। और मैं तो उन माँओं की बात कर रही हूँ, जो अक्सर अपना पहला बच्चा सोलह-सत्रह साल की कच्ची उम्र में जनती हैं और फिर जनती चली जाती हैं, साल-दर-साल। कुपोषित देह, ख़ून की भीषण कमी, यह तो हमारे-जैसे देश में माँओं के लिए आम बात है। गर्भ में शिशु पलने के बावजूद जहाँ पर वह माँ सबसे आख़िर में परिवार का बचा-खुचा निगलती है और उस बेस्वाद निवाले से भी सारी पौष्टिकता उसके गर्भ में पलनेवाला कुल का चिराग अपने हिस्से कर लेता है। जन्म के बाद भी वह बच्चा अपनी माँ की सूखी छातियों को चूसकर मानो उसकी रही-सही जीवन-शक्ति ही निचोड़ लेता है। मातृत्व का वह काव्यात्मक रूप, जिसे हमने कविताओं, कहानियों और चित्रों में जाना है, इस प्रक्रिया में कहीं नज़र नहीं आता। बल्कि गहराई में जाने पर यह समझ बनती है कि साल-दर-साल बच्चे जनना तो एक गंभीर राजनीतिक मसला है – वह है हमारे समाज में स्त्री-पुरुष के अधिकारों में मौलिक असमानता।

एक स्त्री का अपने शरीर पर कोई अधिकार नहीं। हमारे-जैसे पिछड़े समाज में वह भोग्य-वस्तु है, इस्तेमाल की वस्तु है और उसका इस्तेमाल इस पुरुष शासित समाज के नियमों के आधार पर होता है। हाँ शिक्षा का अभाव भी उसमें निर्णायक भूमिका अदा करता है, जोकि स्त्री-पुरुष दोनों पर लागू होता है। दुनिया में जब और जहाँ-जहाँ नारी को समान दर्जा और सबको उचित शिक्षा पाने का अवसर मिला है, वहाँ इस तरह का शोषण लगभग समाप्त हो गया है। पर क्या सिर्फ़ यह शिक्षा की कमी है, जो हरेक परिवार में इतने सारे बच्चे जनने के कारण है? नहीं, हमारा मानना है कि इसका ठोस आर्थिक आधार भी है, आइए देखते हैं।

सुना है सारी जीव-जातियों में शायद एक इंसान का बच्चा ही है, जिसकी सालों तक देखभाल करनी पड़ती है। मध्यम वर्ग, अमीर वर्ग में तो "बच्चे" बड़े ही नहीं होते, युवावस्था तक वे अपने माँ-बाप और परिजनों से सहारे की उम्मीद रखते हैं। अपने हाथ-पाँव चलाकर कुछ कर दिखाने की जगह वे विरासत में मिली संपत्ति या जान-पहचान से मिली नौकरी पर ज़्यादा भरोसा रखते हैं। बल्कि इसे अपनी शान समझते हैं – "मैं टाटा का भतीजा हूँ", "मैं बिड़ला का भांजा हूँ", "मैं फलाँ ख़ानदान का हूँ", "मैं ब्राह्मण हूँ", आदि-आदि। ये सारे कुलदीपक सही मायने में एक भारी बोझ हैं, जिन्हें समाज सदियों से ढो रहा है। पर ग़रीब तबक़े का बच्चा तो अपनी पहली साँस लेने के पहले से ही ज़िंदा रहने की जद्दोजहद में फँस जाता है। कुपोषित, कमज़ोर माँओं के ज़्यादातर बच्चे भी कुपोषित होते हैं। ह्यूमन डेवलपमेंट रिपोर्ट 2009 के अनुसार भारत में 47 प्रतिशत बच्चे, यानी हर दूसरा बच्चा कुपोषण का शिकार है। भारत में हर साल पाँच साल से कम उम्र के 23.5 लाख बच्चे मर जाते हैं। यहाँ हर 15 सेकेंड में एक बच्चे की मौत हो जाती है। चार लाख से ज़्यादा बच्चे तो जन्म के 24 घंटे के भीतर बिल्कुल साधारण बीमारियों (डायरिया, निमोनिया) के चलते मर जाते हैं। मतलब यह कि ग़रीब तबक़े के माँ-बाप को इस बात का कोई भरोसा नहीं कि उनके कितने बच्चे वयस्क होने तक बच पाएँगे। छः साल की उम्र तक पहुँचते-पहुँचते ग़रीब परिवार का बच्चा परिवार की आमदनी में योगदान करना शुरू कर देता है। और महज़ 12 साल की उम्र या उससे भी कम में पारिवारिक आय में उसका योगदान, जितना उस पर ख़र्च होता है, उससे ज़्यादा होता है। इसका तात्पर्य यह है कि बच्चा एक मुँह नहीं बल्कि दो हाथ होता है परिवार के लिए। अब आप ही बताइए कि असंगठित मज़दूरों पर अर्जुन सेनगुप्ता की अध्यक्षता में बनी सरकारी कमिटी के अनुसार, अगर 78 प्रतिशत भारतीयों को रोज़ 20 रुपए या फिर उससे भी कम में गुज़ारा करना पड़ता है, तो फिर सिर्फ़ दिन में दो जून खाना जुटाने के लिए ही परिवार के 7-8 लोगों को रोज़गार में जुटना पड़ेगा या नहीं? आख़िर चावल, आटा, चीनी, दाल, नमक, तेल, आलू, प्याज़ आदि के दाम पिछले कुछ सालों में आसमान को भी चीरकर मानो किसी और नक्षत्र तक पहुँच चुके हैं। इसके अलावा कपड़ा, मकान और चीज़ें भी तो चाहिए। इसमें बीमार पड़ना विलासिता है, जो कि छः साल के बच्चे के लिए भी वर्जित है। इतिहास के पन्ने पलटकर देखें, तो समझ बनती है कि आज के विकसित देशों में भी सौ-सवा सौ साल पहले तक परिवारों में औसतन दर्जनों बच्चे होते थे। पर जैसे-जैसे आधुनिक चिकित्सा में विकास के चलते मृत्युदर में गुणात्मक कमी आई और उसके साथ-साथ मज़दूर आंदोलनों की बदौलत पगार बढ़ी और काम के घंटों और परिवेश पर क़ानूनी नियंत्रण लागू हुए, परिवार छोटे होते गए। सदी की शुरुआत आते-आते कई यूरोपीय देशों में सरकारी सोशल सिक्योरिटी (सामाजिक सुरक्षा) की व्यवस्था हो जाने पर लोगों को स्वास्थ्य, शिक्षा, आवास और बेरोज़गारी भत्ता जैसी बुनियादी ज़रूरतें अधिकार के तौर पर मिलने लगीं और परिवार छोटे और ख़ुशहाल नज़र आने लगे। दूर जाने की ज़रूरत नहीं, हमारे ही देश के केरल राज्य को ले लीजिए। आबादी के घनत्व (एक वर्ग किलोमीटर में बसने वाली औसत आबादी) के हिसाब से यह प्रदेश देश के औसत तकरीबन तीन गुना ज़्यादा बैठता है। पर बेहतर स्वास्थ्य सुविधा, शिक्षा की सुविधा और कारगर खाद्यान्न सब्सिडी के चलते यहाँ बच्चों की मृत्युदर देश के औसत से आधा है। यहाँ स्त्री शिक्षा की दर देश के औसत से तकरीबन दो गुणा ज़्यादा है (केरल में 87 प्रतिशत औरतें शिक्षित हैं)। और, शायद इसी के चलते यहाँ जन्मदर राष्ट्रीय औसत की एक-तिहाई है, जोकि अमेरिका जैसे देश से थोड़ी ही ज़्यादा है। अब जिस इंग्लैंड को देखकर माल्थस साहब शंकित हो गए थे, उसकी आबादी माल्थस साहब के समय करीब 83 लाख थी। आज इंग्लैंड की आबादी करीब 512 लाख है, यानी माल्थस साहब के समय से साढ़े छः गुना ज़्यादा। पर क्या आज कोई इंग्लैंड के बारे में वह शंका जताएगा, जो कि आज से दो सौ साल पहले जताई गई थी? कदापि नहीं। फिर से यह बात साबित होती है कि महज़ बढ़ती आबादी ही ग़रीबी और बदहाली जैसी समस्याओं का मुख्य कारण नहीं है।

मज़दूर साथियो,

मुक्ति संग्राम आपका अपना अख़बार है। आप अपने कारख़ाने, अपनी बस्ती में मज़दूरों-मेहनतकशों के हालातों के बारे लिखकर भेजिए। समाज में मज़दूरों-मेहनतकशों के साथ होने वाली बेइंसाफ़ी, लूट-शोषण-उत्पीड़न के और संघर्षों के अपने तजुर्बों के बारे में लिखकर भेजिए। आपको मुक्ति संग्राम में छपी सामग्री कैसी लगती है, आपको इसमें क्या कमियाँ-कमज़ोरियाँ नज़र आती हैं – बेझिझक लिखकर भेजिए। आपके सुझाव मुक्ति संग्राम को बेहतर बनाने के लिए बहुत ज़रूरी हैं।

– संपादक, मुक्ति संग्राम

सबसे ख़तरनाक होता है
मुर्दा शांति से भर जाना
न होना तड़प का सब सहन कर जाना
घर से निकलना काम पर
और काम से लौटकर घर जाना
सबसे ख़तरनाक होता है
हमारे सपनों का मर जाना

– अवतार पाश

जन्म – 9 सितंबर 1950
शहादत – 23 मार्च 1931

मोदी सरकार के दस सालों की आर्थिक नीतियों का कच्चा चिट्ठा

(पन्ना 16 से आगे)

रिकॉर्ड बढ़ोतरी हुई है। इस समय देश में पिछले 50 साल की रिकॉर्ड बेरोज़गारी है। मोदी सरकार ने 2014 में हर साल 2 करोड़ नौकरियाँ देने की बात कही थी, लेकिन कुर्सी हासिल करने के बाद कितनी नौकरियाँ दी गईं, इस पर सरकार चुप है। सरकार ने पिछले साल शीतकालीन सत्र के दौरान संसद में बताया था कि 2022 तक आठ साल की अवधि के दौरान कुल 22 करोड़ नौजवानों के आवेदन प्राप्त हुए, जिनमें से 7 लाख 40 हज़ार नौजवानों को रोज़गार दिया गया, जो कि कुल आवेदनों का केवल 0.33 प्रतिशत बनता है। देश में बेरोज़गारी का अंदाज़ा इस बात से भी लगाया जा सकता है कि पिछले हफ़्ते उत्तर प्रदेश पुलिस में 60,000 कांस्टेबल पदों के लिए करीब 50 लाख आवेदन आए थे। यहाँ यह भी ग़ौरतलब है कि तमाम सरकारी विभागों में लाखों पद ख़ाली पड़े हैं। करीब 1.50 लाख प्राइमरी स्कूलों में सिर्फ़ एक ही शिक्षक है। देश के स्कूल करीब 11 लाख शिक्षकों की कमी से जूझ रहे हैं। रेलवे में लगभग 3.12 लाख पद, बी.एस.एन.एल. में 18,535 पद ख़ाली पड़े हैं, लेकिन भरे नहीं जा रहे। इसी तरह अकेले केंद्र सरकार के विभागों में 9 लाख से ज़्यादा पद ख़ाली पड़े हैं, लेकिन निजीकरण की राह चल रही सरकार इन्हें भर नहीं रही।

मोदी सरकार ने 8 नवंबर 2016 को नोटबंदी की थी। वर्ष 2016 में की गई नोटबंदी को काले धन पर सर्जिकल स्ट्राइक बताया गया था, लेकिन असल में यह आम मेहनतकश जनता पर सर्जिकल स्ट्राइक साबित हुई। काले धन का तो यह बाल भी बाँका नहीं कर पाई, ना ही इसका ऐसा कोई मक़सद था। सबसे ज़्यादा काला धन तो आज भाजपा के नेताओं और इसके चहेते पूँजीपतियों के पास है। नोटबंदी के कारण ग़रीब मज़दूरों के लिए भोजन, दवा-इलाज, शिक्षा, कमरे का किराया, परिवहन जैसी बुनियादी ज़रूरतों को पूरा करना और भी मुश्किल हो गया। नोटबंदी के कारण हुई सैकड़ों मौतें ग़रीबों पर बरपाए गए क़हर का एक और बेहद दर्दनाक पहलू है। लेकिन मोदी सरकार नोटबंदी को 'देश' के हित में उठाया गया साहसी क़दम बताती है।

कोरोना-कोरोना का शोर मचाकर, बीमारी को महामारी कहकर, थोपे गए लॉकडाउन के गहरे ज़ख़्म जो मोदी हुकूमत ने मेहनतकशों को दिए हैं, वे कभी भी नहीं भुलाए जा सकते। पहले से ही भयंकर ग़रीबी की मार झेल रहे लोगों को भूख से मरने के लिए छोड़ दिया गया था। घरों को लौट रहे मज़दूर रेलों, ट्रकों के नीचे कुचले गए। पहले से ही कमज़ोर सेवाओं के ठप्प होने के कारण ग़रीब और मध्यम वर्ग के लोग गंभीर ही नहीं, बल्कि बड़े स्तर पर मामूली बीमारियों के कारण भी मारे गए। बड़ी संख्या में मौतों को कोरोना-मौतों के खाते में डालकर, मोदी मीडिया और पूँजीपति वर्ग की बौद्धिक दलालों के ज़रिए तरह-तरह का झूठा-मनगढ़ंत प्रचार करके लॉकडाउन को सही ठहराने के लिए मोदी सरकार ने पूरा ज़ोर लगाया। लोग गुमराह भी हुए। लेकिन धीरे-धीरे लोगों की सच्चाई सामने आने लगी, विरोध तीखा होने लगा, तो हुकूमत को पैर पीछे खींचने पड़े। कोरोना के बहाने लोगों के जनवादी अधिकारों पर थोपी गई पाबंदियों को और जारी रखने की मंशा पूरी नहीं हो सकी। लेकिन कोरोना के डर, लॉकडाउन का लाभ उठाकर इस हुकूमत ने मेहनतकशों का गंभीर आर्थिक, राजनीतिक, सामाजिक नुक़सान किया। पूँजीपति वर्ग को बहुत कुछ मिला है, फ़ाशीवादियों ने बहुत कुछ हासिल किया है। इसके ज़रिए वैश्वीकरण-उदारीकरण-निजीकरण की नीतियों को और तेज़ कर दिया गया।

भाजपा-आर.एस.एस. ने भारत सरकार के तख़्त पर विराजमान होने के लिए हिंदुत्वी कट्टरपंथी फ़िरक़ापरस्त सियासत का ख़ूब इस्तेमाल किया था। इसमें कामयाबी हासिल करने के बाद इस सियासत को और ज़्यादा मज़बूती मिली। देशी-विदेशी पूँजीपतियों के पक्ष में सख़्त से सख़्त आर्थिक नीतियाँ लागू करने के लिए लोगों का ध्यान असल मुद्दों से हटाया जा रहा है, जनता को धर्म के नाम पर बाँटा जा रहा है। अल्पसंख्यक धर्मों के लोगों, ख़ासकर मुसलमानों और ईसाइयों के ख़िलाफ़ नफ़रत में बेइंतहा इज़ाफ़ा हुआ है। मोदी सरकार द्वारा मुसलमानों के सारे जनवादी अधिकार छीनने के लिए सी.ए.ए.-एन.पी.आर.-एन.आर.सी. लाने, धारा 370 का ख़ात्मा, राम मंदिर निर्माण-आयोजन जैसे सांप्रदायिक-फ़ाशीवादी क़दम उठाए गए हैं। भारत को हिंदू राष्ट्र बनाने की तरफ़ तेज़ी से बढ़ा जा रहा है। इसके अलावा जनता के विचार-व्यक्त करने और संगठित संघर्ष करने के जनवादी अधिकारों को कुचलने के लिए यू.ए.पी.ए., एन.एस.ए. जैसे दमनकारी क़ानूनों का इस्तेमाल तेज़ हुआ है। अंग्रेज़ों के ज़माने के आपराधिक क़ानूनों को बदलने के नाम पर जनता पर दमन करने लिए आपराधिक क़ानूनों के दाँत और ज़्यादा तीखे कर दिए गए हैं। मोदी सरकार की आर्थिक-राजनीतिक-सामाजिक नीतियों के जनविरोधी चरित्र को उजागर करने वाले क्रांतिकारी-जनवादी कार्यकर्ताओं, बुद्धिजीवियों, लेखकों-पत्रकारों को जेलों में ठूँसा गया है, घरों में नज़रबंद किया गया है। यहाँ तक कि विरोधी राजनीतिक पार्टियों को दबाने के लिए अदालतों, ई.डी. जैसे संस्थानों के इस्तेमाल जैसे ग़ैर-जनवादी हथकंडे अपनाए गए हैं। पूँजीपति वर्ग के ही एक हिस्से खेतीहर पूँजीपतियों की न्यूनतम समर्थन मूल्य की माँग (जो पूरी तरह मज़दूर-मेहनतकश विरोधी है) पर हो रहे आंदोलन को दबाने के लिए बर्बर दमन का इस्तेमाल किया जा रहा है। यानी पूँजीपति वर्ग के अलग-अलग हिस्सों के लिए भी जनवाद का दायरा सिकुड़ा है। भारत में मौजूद अलग-अलग राष्ट्रीयताओं का एकाधिकारी पूँजीपतियों द्वारा शोषण तेज़ करने के लिए, उनके आर्थिक संसाधनों की लूट और ज़्यादा तीखी करने के लिए तेज़ी से क़दम आगे बढ़ाए गए हैं। जम्मू-कश्मीर को धारा 370 और 35ए के तहत मिले अधिकारों का ख़ात्मा किया गया है। 'हिंदी, हिंदू, हिंदुस्तान' की नीति के तहत सभी राष्ट्रीय समूहों पर हिंदी थोपने की कोशिशें हुई है। राज्यों का जी.एस.टी. बकाया बड़े स्तर पर रोककर रखा जा रहा है। 'एक देश-एक चुनाव' लागू करने की कोशिशें तेज़ हुई हैं। राष्ट्रीयताओं के अधिकारों पर इस हमले का सबसे ज़्यादा आर्थिक-राजनीतिक नुक़सान मज़दूर-मेहनतकश जनता को ही उठाना पड़ रहा है और पड़ेगा।

ऊपर हमने मोदी हुकूमत के दस साल के दौरान लागू की गई आर्थिक नीतियों की संक्षेप में चर्चा की है। इस बात में कोई शक नहीं कि मोदी सरकार जनता को कुछ भी ऐसा नहीं गिना सकती, जिसने जनता का जीवन स्तर ऊपर उठाया है, जिसने देश की जनता को बेहतर जीवन की उम्मीद बँधाई हो। इसलिए मोदी सरकार द्वारा विकास के किए जा रहे सारे दावे खोखले हैं। पूँजीपतियों के दलालों भाजपा-आर.एस.एस. के घोर जनविरोधी चरित्र को समझने, इनके सांप्रदायिक-फ़ाशीवादी सियासत के जाल से बाहर निकलकर वर्ग संघर्ष की राह चुनने में ही मज़दूरों-मेहनतकशों की बेहतरी है। वरना पूँजीपति अपने इन दलालों के ज़रिए मज़दूरों-मेहनतकशों के ख़ून-पसीने को निर्मम से निर्मम ढंग से निचोड़ते रहेंगे और अपने लिए मुनाफ़े-धन-दौलत के अंबार लगाते रहेंगे।

फार्म – IV

1.	**प्रकाशन स्थान**	#212, वीपीओ–पख्खोवाल, तहसील – रायकोट, जिला – लुधियाणा, पंजाब-141108
2.	**आविधकता**	मासिक
3.	**प्रिंटर का नाम**	रविंदर कौर
	नागरिकता	भारतीय
	पता	#212, वीपीओ–पख्खोवाल, तहसील – रायकोट, जिला – लुधियाणा, पंजाब-141108
4.	**प्रकाशक का नाम**	रविंदर कौर
	नागरिकता	भारतीय
	पता	#212, वीपीओ–पख्खोवाल, तहसील – रायकोट, जिला – लुधियाणा, पंजाब-141108
5.	**संपादक का नाम**	लखविंदर सिंह
	नागरिकता	भारतीय
	पता	मोहल्ला जस्सड़ाँ, नजदीक़ बी.एस.एन.एल. एक्सचेंज, सरहिंद शहर, जिला फ़तेहगढ़ साहिब, पंजाब – 140406
6.	**मालिक का नाम**	रविंदर कौर
	नागरिकता	भारतीय
	पता	#212, वीपीओ–पख्खोवाल, तहसील–रायकोट, जिला–लुधियाणा, पंजाब-141108

(रविंदर कौर के अलावा कोई भी अन्य पूँजी होल्डर पार्टनर या शेयर होल्डर नहीं है।)

मैं रविंदर कौर घोषणा करती हूँ कि ऊपर दिए गए सभी तथ्य मेरी अधिकतम जानकारी और विश्वास के मुताबिक़ सही हैं।

दिनांक - 1 मार्च 2024 रविंदर कौर (प्रकाशक)

मोदी सरकार के दस सालों की आर्थिक नीतियों का कच्चा चिट्ठा

भाजपा-आर.एस.एस. के मज़दूर-मेहनतकश विरोधी चरित्र को पहचानो!

देशी-विदेशी पूँजीपतियों के दलालों को जनता में नंगा करो!

जल्द ही देश में लोकसभा चुनाव होने जा रहे हैं। इस तरह भाजपा के नेतृत्व वाले एन.डी.ए. गठबंधन की मोदी सरकार का दूसरा कार्यकाल भी ख़त्म होने जा रहा है। भाजपा-एन.डी.ए. फिर से सरकार बनाने के लिए हर हथकंडा आजमा रहे हैं। जनता से झूठे वादे किए जा रहे हैं। मोदी के नाम पर गारंटियाँ बाँटी जा रही हैं। पूँजीपतियों, ख़ासकर अंबानी-अदाणी जैसे एकाधिकारी पूँजीपतियों की पिछले 10 साल में भाजपा ने ख़ूब सेवा की है। इनसे भाजपा को ख़ूब और अन्य सभी पूँजीवादी पार्टियों से कहीं ज़्यादा चुनावी चंदा मिल रहा है। जिसे यह अपने पक्ष में चुनावी माहौल बनाने के लिए पूरी कुशलता से इस्तेमाल कर रही है।

भाजपा की सबसे ज़्यादा उम्मीद फ़िरक़ापरस्ती पर लगी हुई है। आम हिंदू जनता की धार्मिक भावनाओं का इस्तेमाल करके, दूसरे धर्मों के लोगों, ख़ासकर मुसलमानों के ख़िलाफ़ नफ़रत और हिंसा भड़काकर, हिंदू वोट बैंक मज़बूत करने की पुरज़ोर कोशिश की जा रही है। क्योंकि भाजपा जानती है कि पिछले दस सालों में इसने मज़दूर-मेहनतकश विरोधी नीतियों से जनता का जो कचूमर निकाला है, उसने जनता के सामने भाजपा और इसके सहयोगियों से जनता की सारी उम्मीदों को ख़त्म कर दिया है। 'मोदी है तो मुमकिन है' और 'मोदी की गारंटी' जैसे नारों का पूरी तरह दिवाला निकल चुका है। इसलिए इसकी पूरी उम्मीद धर्म के आधार पर पालाबंदी करने में, देश की फ़िज़ा में और ज़्यादा फ़िरक़ापरस्त ज़हर फैलाने में लगी हुई है।

मोदी हुकूमत ने 2014 से ही देशी-विदेशी पूँजीपतियों की सेवा में और तमाम मेहनतकश जनता के ख़िलाफ़ निजीकरण-उदारीकरण-वैश्वीकरण की आर्थिक नीतियों को पहले की सरकारों से कहीं तेज़ी और सख़्ती से लागू किया है। मोदी हुकूमत की आर्थिक नीतियों का सबसे बड़ा हमला मज़दूर और अर्ध-मज़दूर आबादी है। यह वह आबादी है जो या तो उत्पादन के साधनों से पूरी तरह से वंचित है या लगभग वंचित हो चुकी है। इस आबादी का गुज़ारा औद्योगिक, कृषि और सेवा क्षेत्र के पूँजीपतियों को अपनी श्रम शक्ति बेचकर ही चलता है। आज यह आबादी कुल मेहनतकश आबादी का करीब 70 फ़ीसदी है। मज़दूरों-अर्धमज़दूरों की इस आबादी समेत तमाम मेहनतकश आबादी का मोदी सरकार के दस साल की आर्थिक नीतियों ने हालात बद से बदतर बना दिए हैं।

मोदी सरकार का एक बहुत बड़ा मज़दूर विरोधी क़दम श्रम क़ानूनों में मज़दूर विरोधी संशोधन करने में कामयाबी हासिल करना रहा है! पुराने 29 श्रम क़ानूनों को ख़त्म करके संहिताओं/कोड के रूप में चार नए श्रम क़ानून बनाए गए हैं। श्रम क़ानूनों को सरल बनाने के नाम पर इन्हें पहले से भी ज़्यादा पूँजीपति पक्षधर बना दिया गया है। देशी-विदेशी पूँजीपतियों को मज़दूरों के शोषण से और ज़्यादा मुनाफ़ा कमाने की खुली छूट दी गई है। आठ घंटे काम की दिहाड़ी, न्यूनतम वेतन, ओवरटाइम काम के घंटे, यूनियन बनाने, एकजुट संघर्ष करने, हड़ताल करने के अधिकारों पर बड़ा हमला किया है। नए श्रम क़ानूनों संबंधी भारत सरकार और राज्य सरकारों के स्तर पर नियम बनाने की प्रक्रिया चल रही है, जिसके पूरे होने के बाद ये क़ानून लागू कर दिए जाएँगे। अगर ये नए श्रम क़ानून लागू हो जाते हैं, तो मज़दूरों के क़ानूनी श्रम अधिकार और ज़्यादा कम हो जाएँगे, मज़दूरों को पूँजीपतियों की और ज़्यादा ग़ुलामी झेलनी पड़ेगी, आर्थिक शोषण पहले से कहीं अधिक बढ़ जाएगा। श्रम क़ानूनों में संशोधनों के ख़िलाफ़ पूरे देश में आवाज़ बुलंद हुई है, लेकिन अभी भी मज़दूर आंदोलन काफ़ी कमज़ोर है, जिसके चलते मज़दूर वर्ग यह हमला पीछे धकेलने में कामयाब नहीं हो पाया है।

मोदी हुकूमत द्वारा तीन कृषि क़ानूनों के रूप में मज़दूर-मेहनतकश जनता का शोषण तीखा करने लिए बड़ा हमला किया था। इन तीन कृषि क़ानूनों के लागू होने से पूँजीपतियों को अनाज के भंडारण, जमाखोरी, कालाबाज़ारी की खुली छूट मिलती, अनाज की सरकारी ख़रीद बंद हो जाती, सार्वजनिक वितरण प्रणाली (राशन डिपो) का ख़ात्मा होता, अनाज भंडारण से संबंधित भारत सरकार के एफ़.सी.आई., पंजाब सरकार के पनसप, हरियाणा सरकार के एच.ई.एफ़.डी. जैसे उपक्रम बंद होते, इनके कर्मचारी भी बेरोज़गार होते, कंपनियों से समझौतों में विवाद संबंध में हाईकोर्ट से नीचे किसी भी कोर्ट में जाने का किसानों का अधिकार छिन जाता। तीन कृषि क़ानूनों के ख़िलाफ़ उठे ज़ोरदार जन आंदोलन, जिसमें मुख्य ताक़त किसान बने, के चलते मोदी हुकूमत को थूककर चाटना पड़ा और ये क़ानून वापस लेने पड़े। लेकिन एकाधिकारी पूँजीपतियों के हित में इन क़ानूनों के मक़सद पूरे करने के लिए मोदी हुकूमत तमाम तिकड़मबाजियों पर उतरी हुई है।

मोदी हुकूमत की आर्थिक नीतियों के मज़दूर-मेहनतकश विरोधी चरित्र को भारत में तेज़ी से बढ़ी अमीरी-ग़रीबी की खाई से देखा जा सकता है। ऑक्सफ़ैम की रिपोर्ट के अनुसार, भारत के शीर्ष 1 प्रतिशत अमीरों के पास देश की कुल दौलत का 40 प्रतिशत हिस्सा है और निचली 50 प्रतिशत ग़रीब आबादी के पास केवल 3 प्रतिशत हिस्सा है। कोरोना-लॉकडाउन की शुरुआत से लेकर नवंबर 2022 तक अरबपतियों की संपत्ति हर दिन 3608 करोड़ रुपए के हिसाब से बढ़ी है। भारत में अरबपतियों की गिनती 2020 में 106 से 2022 में 166 हो गई। 25 साल में यह पहली बार हो रहा है कि दौलत और ग़रीबी एक साथ इतनी तेज़ी से बढ़ रहे हों।

पूँजीपतियों के पास अकूत दौलत है, लेकिन टैक्सों में उन्हें ख़ूब छूट मिल रही है। ऑक्सफ़ैम की ताज़ा रिपोर्ट में यह बात जीएसटी का 64% नीचे के 50% लोगों से आया, जबकि शीर्ष 10% से केवल 3% आया। यानी टैक्स का ज़्यादा बोझ भी पूँजीपतियों पर डालने के बजाय आम मज़दूर-मेहनतकश जनता पर ही डाला जा रहा है। मोदी सरकार अपनी शुरुआत से ही एकाधिकारी पूँजीपति घरानों पर ख़ासतौर पर मेहरबान रही है। 'द वायर' की एक रिपोर्ट के मुताबिक़ वित्तीय साल 2017-18 में कुल टैक्सों में 'कारपोरेट टैक्स' 32 फ़ीसदी था, जो वित्तीय साल 2020-21 में घटकर 24 फ़ीसदी रह गया। कई आर्थिक क्षेत्रों में तो नई कंपनियों के लिए तो 15 फ़ीसदी टैक्स अदायगी तय कर दी गई है। टैक्स घटाए जाने का सबसे अधिक लाभ अडानी-अंबानी जैसे कारपोरेटों को हुआ है। मज़दूर और अन्य मेहनतकश अपनी पूरी आमदनी या आमदनी का बड़ा हिस्सा ख़रीदारी पर लगाते हैं। इस प्रकार उन्हें अपनी पूरी आमदनी या आमदनी के बड़े हिस्से पर अप्रत्यक्ष टैक्स देना पड़ता है। मोदी हुकूमत के दौरान अप्रत्यक्ष टैक्सों का बोझ मेहनतकशों पर लगातार बढ़ता गया है। वित्तीय साल 2017-18 में, जब वस्तुएँ और सेवाएँ कर लागू किया गया था, उस वक़्त अप्रत्यक्ष टैक्सों का कुल टैक्सों में हिस्सा 52 फ़ीसदी था। वित्तीय साल 2020-21 तक यह घटकर 47 फ़ीसदी रह गया। इस प्रकार मेहनतकशों पर टैक्सों का और अधिक बोझ लाद दिया गया है।

मोदी हुकूमत द्वारा सरकारी ख़ज़ाना पूँजीपतियों पर किस क़दर लुटाया जा रहा है, इसका एक बड़ा उदाहरण यह है कि पिछले 10 सालों के दौरान मोदी सरकार ने शीर्ष 150 बड़े पूँजीपतियों का 13 लाख करोड़ का क़र्ज़ माफ़ किया है। दूसरी तरफ़ जनता से राशन, शिक्षा, स्वास्थ्य, परिवहन और अन्य सरकारी सुविधाओं को बड़े स्तर पर छीना गया है।

मोदी सरकार की नीतियों के कारण बेतहाशा बढ़ी महँगाई ने मेहनतकश जनता को बेहाल कर दिया है। तेल, गैस और सब्ज़ियों की क़ीमतों ने रसोई का बजट पहसे से भी कहीं ज़्यादा बिगाड़ दिया है। पिछले 10 सालों में ही तेल की क़ीमतें मनमाने ढंग से बढ़ाई गई हैं और सब्ज़ियों और फलों की क़ीमतों में भी आग लगी हुई है। दवा-इलाज, शिक्षा, परिवहन आदि जनता की बुनियादी ज़रूरतों से जुड़े हर मामले में महँगाई काफ़ी ज़्यादा बढ़ गई है। जारी सरकारी आँकड़ों के मुताबिक़, मुद्रास्फीति दर अब तक के उच्चतम स्तर 6.95% पर पहुँच गई है। लेकिन असल महँगाई इस सरकारी दर से कहीं अधिक है, क्योंकि सरकारी आँकड़े असल स्थिति को छुपाते हैं।

मोदी सरकार ने अपने दस साल के दौरान कई योजनाएँ शुरू कीं, जिनका बुरी तरह जुलूस निकल चुका है। उदाहरण के तौर पर उज्जवल योजना के तहत जिन 9.6 करोड़ लोगों ने गैस कनेक्शन लिया उनमें से 4.12 करोड़ लोग फिर से सिलेंडर भरवा ही नहीं पाए।

बेरोज़गारी इस पूँजीवादी व्यवस्था के वजूद से जुड़ा नियम है। लेकिन मोदी सरकार के दस साल के कार्यकाल में बेरोज़गारी में

(पन्ना 15 पर जारी)

मालिक, प्रकाशक और मुद्रक रविंदर कौर द्वारा न्यू दशमेश प्रिंटर्ज, पता – 178-179, रणजीत नगर, जलंधर, पंजाब–144001 से मुद्रित और
उन्हीं द्वारा म.नं. 212, वी.पी.ओ. – पख्खोवाल, तहसील – रायकोट, ज़िला – लुधियाणा, पंजाब – 141108 से प्रकाशित। संपादक – लखविंदर सिंह